छत्तीसगढ़ प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा
हिन्दी मासिक मुख पत्र
माह - श्रावण-भाद्रपद, संवत् 2076
अगस्त 2019

ओ३म्

अंक 166, मूल्य 10

अग्निदूत

अग्निं दूतं वृणीमहे. (ऋग्वेद)

स्वामी दिव्यानन्द जी

स्वतन्त्रता दिवस, श्रावणी पर्व एवं रक्षाबन्धन की हार्दिक शुभकामनाएँ एवं बधाईयाँ

दिनांक 28 जुलाई 2019 को महर्षि दयानन्द सेवाश्रम टाटीबन्ध रायपुर में सम्पन्न अंतरंग सभा बैठक में सभा के नवनिर्वाचित पदाधिकारियों एवं अंतरंग सदस्यों का सम्मान किया गया का चित्रमय झलकियाँ

अग्निदूत

हिन्दी मासिक

राष्ट्रीय, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक विचारों की मासिक पत्रिका

विक्रमी संवत् – २०७६
सृष्टि संवत् – १,९६,०८,५३,११९
दयानन्दाब्द – १९६

: प्रधान सम्पादक :
आचार्य अंशुदेव आर्य
प्रधान सभा
(मो. ०७०४९२४४२२४)

★

: प्रबंध सम्पादक :
आर्य दीनानाथ वर्मा
मंत्री सभा
(मो. ९८२६३६३५७८)

★

: सहप्रबंध सम्पादक :
श्री चतुर्भुज कुमार आर्य
कोषाध्यक्ष सभा
(मो. 8370047335)

★

: सम्पादक :
आचार्य कर्मवीर
मो. ८१०३९६८४२४

पेज सज्जक :
श्रीनारायण कौशिक

– कार्यालय पता –
छत्तीसगढ़ प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा
दयानन्द परिसर, आर्यनगर, दुर्ग (छ.ग.)४९१ ००१
फोन : (०७८८) ४०३०९७२
फैक्स नं. : ०७८८–४०११३४२ ;
e-mail : chhattisgarhsabha@gmail.com

वर्ष – १५, अंक १ ओ३म् मास/सन् – अगस्त २०१९

श्रुतिप्रणीत–सिद्धधर्मवह्निरूपतत्त्वकं,
महर्षिचित्त–दीप्त वेद–सारभूतनिश्चयं ।
तदग्निसंज्ञकस्य दौत्यमेत्य सद्मसद्मकम् ,
सभाग्निदूत–पत्रिकेयमादधातु मानसे ।।

विषय - सूची

			पृष्ठ क्र.
१.	स्वामी से कौन नहीं मांगता ?	स्व. रामनाथ वेदालंकार	०४
२.	मजहब ही है सिखाता आपसा में वैर रखना	आचार्य कर्मवीर	०५
३.	ईश्वर की सर्वव्यापकता	डॉ. बिजेन्द्रपाल सिंह	०८
४.	परस्परतंत्र	नरेन्द्र आहूजा 'विवेक'	१०
५.	वेद न होते तो राम, कृष्ण, दयानन्द तथा वैदिक धर्म भी न होता	मनमोहन कुमार आर्य	१२
६.	राष्ट्रधर्म के पुरस्कर्ता : श्रीकृष्ण	क्षितीज वेदालंकार	१४
७.	अवकाशानुराग	ओमप्रकाश बजाज	१७
८.	आखिर क्या है आजादी के मायने	ऋषि आर्य	१८
९.	यज्ञों के द्वारा जीवन को स्वर्गमय बनावें	डॉ. अशोक आर्य	२०
१०.	स्वदेशी से स्वालम्बी गांव	अनिल आर्य	२३
११.	कृष्णाय तुभ्यं नमः (जन्माष्टमी पर विशेष)	लोचन आर्य	२५
१२.	कैंची की तरह काटना नहीं, सुई की तरह सीना सीखो	कन्हैयालाल आर्य	२६
१३.	स्वामी समर्पणानन्द–व्यक्ति नहीं विचार	स्वामी विवेकानन्द	२८
१४.	छत्तीसगढ़ में वैदिक नाद बजाने वाले निर्भीक संत– स्वामी दिव्यानन्द	साभार उद्गम	२९
१५.	आयुर्वेदामृत	विनोद कुमार सोनी	३०
१६.	होमियोपैथी से कोलेस्ट्राल का उपचार का उपचार	डॉ. विद्याकांत त्रिवेदी	३२
१७.	समाचार प्रवाह		३३

सूचना : छत्तीसगढ़ प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा का अणुसंकेत
(ई-मेल) E-mail : chhattisgarhsabha@gmail.com
(सम्पादक) E-mail : shastrikv1975@gmail.com

सूचना : हमारा नया वेब साइट देखें
Website : http:/www.cgaryapratinidhisabha.com

वार्षिक शुल्क–१००/– दसवर्षीय–८००/–

लेख में प्रकट किए विचारों के लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं है।

सम्पादक प्रकाशक मुद्रक – आचार्य अंशुदेव आर्य द्वारा छत्तीसगढ़ प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा, दयानन्द परिसर, आर्यनगर, दुर्ग के वैदिक मुद्रणालय से छपवाकर प्रकाशित किया गया।

स्वामी से कौन नहीं मांगता ?

भाष्यकार - स्व. डॉ० रामनाथ वेदालङ्कार

मा त्वा सोमस्य गल्दया, सदा याचन्नहं गिरा।
भूर्णिं मृगं न सवनेषु चुकुधं, क ईशानं न याचिषत् ॥

ऋषिः मैत्रावरुणिः मेध्यातिथी काण्वौ। देवता इन्द्रः। छन्दः वृहती।

● (हे इन्द्र परमेश्वर !) (सवनेषु) यज्ञों में (सोमस्य) भक्ति-रस-रुप सोम के (गल्दयां) क्षारण के साथ (गिरा) वाणी से (सदा) हमेशा (याचन्) याचना करता हुआ (अहं) मैं (भूर्णिं) भरण-पोषण-कर्त्ता (आपको) (मृगं न) सिंह के समान (न चुकुधं) क्रुद्ध न कर दूँ। (ईशानं) स्वामी से (कः) कौन (नः) नहीं (याचिषत्) याचना करता हूँ।

हे इन्द्र ! मैं सदा ही तुमसे कुछ-न-कुछ मांगता रहता हूँ, अपनी खाली झोली पसारे तुम्हारे सामने खड़ा रहता हूँ। कभी मैं तुमसे आत्मबल मांगता हूं, कभी बुद्धि की याचना करता हूँ, कभी धर्म-कर्म की अभिलाषा करता हूँ, कभी शत्रुओं पर विजय की कामना करता हूँ, कभी धन-सम्पत्ति के लिए हाथ पसारता हूँ, कभी संकट में साहस और विपत्ति में धैर्य देने के लिए तुम्हारे द्वार खटखटाता हूँ, कभी तुमसे अपनी वैयक्तिक उन्नति और सामाजिक उन्नति की प्रार्थना करता हूँ। पर तुमसे न मांगू तो और किससे मांगू ? तुम्हीं तो विश्व के सम्राट् हो और तुम्हीं मेरे हृदय-मन्दिर के भी राजा हो।

मैं उपासना-रुपी सोम-यज्ञ रचता हूँ, प्रातः मध्याह्न, सायं उसके सवन आयोजित करता हूँ, भक्ति-यज्ञ के शिविर संचालित करता हूं, और उनमें भक्ति-रुप सोम-रस के क्षारण के साथ वाणी से तुम्हारी याचना करता हूँ, भिक्षुक बनकर तुम सम्राट के सामने उपस्थित होता हूँ। पर मुझे भय है कि अहर्निश मांगते-मांगते कहीं मैं तुम्हें कुपित न कर दूँ। सिंह वनराज कहलाता है, पर वह वन्य प्राणियों की मांगे पूरी नहीं करता, प्रत्युत उन्हें अपना ग्रास बनाता है। यदि वे उससे राजा होने के नाते कुछ याचना करें, तो उल्टा वह क्रुद्ध हो उठेगा, और अपना विकराल रुप दिखाकर संत्रस्त कर देगा। पर हे प्रभु ! आप मुझ याचक के सम्मुख सिंह का रुप धारण न करें, मुझे तो आप अपना सौम्य रुप ही दिखाते रहें। मुझे विश्वास है कि मैं जब भी आपके सम्मुख हाथ पसारूंगा, मुझे कुछ-न-कुछ अवश्य मिलेगा, क्योंकि आप भूर्णि हैं, भरण-पोषण-कर्त्ता हैं। आप घावों को भरने वाले हैं, छिद्रों को भरने वाले हैं, रीते हृदय को भरने वाले हैं, खाली भिक्षापात्र को भरने वाले हैं। आप यदि मांगने पर कुपित होंगे तो उसी स्थिति में होंगे, जब मैं केवल मांगता ही चलूंगा और प्राप्ति के लिए प्रयास नहीं करूंगा। पर मैं तो पुरुषार्थी बनकर आपसे मांगता हूँ, आलसी और भाग्यवादी होकर नहीं। अतः आपके मुझपर कुपित होने का प्रश्न ही नहीं है। मैं मांगू और आप देते चलें, यह समा बंधा रहे, मेरी तो यही एक साध है। इस मांगने में मुझे कुछ संकोच-लज्जा नहीं है, क्योंकि स्वामी से कौन नहीं मांगता ?

संस्कृतार्थ :- १. गल्दया गालनेन (निरु. ६.२४) गल स्रवणे। २. डुभृञ् धारणपोषणयोः। ३. मृगसिंह। यथा, मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठा (ऋग्. १.१५४.२)।

मजहब ही है सिखाता आपस में बैर रखना

१५ अगस्त के साथ इस बार आजादी की ७३वीं वर्षगाँठ पूरी हो रही है इसे पूर्वजों द्वारा स्वतन्त्रता दिवस नाम दिया गया, जबकि यह विभाजन दिवस बनकर सामने आया, वह भी मजहब के नाम पर हमने खुशी खुशी इसे इसी रुप में स्वीकार कर लिया है। स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात भारतीय समाज में जो नेतृत्व उभरकर सामने आया उसने कुछ अविवेकपूर्ण अवधारणाओं को भारतीय समाज पर थोपने का अनुचित प्रयास किया। इनमें से पहली बात तो यह थी कि यह नेतृत्व "धर्म" शब्द की वास्तविकता और व्यापकता को नहीं समझ सका। ऊपरी तौर पर "धर्म" के बाह्य स्वरुप को ही इसने धर्म मान लिया।

उदाहरण के रुप में हिन्दुओं द्वारा चोटी रखना और जनेऊ धारण करना धर्म का बाह्य स्वरुप है। जबकि मुसलमानों द्वारा रोजा, जकात, नमाज, हज और कलमा में आस्था रखना स्वधर्म का बाह्य लक्षण है। इसी प्रकार केश, कच्छा, कृपाण, कंघा और कड़ा धारण करना सिक्खों का अपने "धर्म" का बाह्य स्वरुप है। वैसे सिक्ख हिन्दू धर्म की रक्षार्थ बनाये गये गुरुओं के शिष्य थे। इसलिए यह कोई अलग धर्म नहीं अपितु हिन्दू समाज के ही एक अंग है। वस्तुतः धर्म का यह बाह्य स्वरुप सम्प्रदायवाद पर बल देता है। समाज को विभिन्न विचारधाराओं की प्रयोगशाला बनाता है। इससे समाज में विभिन्नताओं और विविधताओं का सृजन होता है। यह अकाट्य सत्य है कि जहाँ विभिन्नता और विविधताओं का बोलबाला हो वहां सामाजिक समरसता का निर्माण संभव नहीं हो सकता।

मानव धर्म का पालन सरल नहीं है : सामाजिक समरसता की स्थापना के लिए मानवीय मानस के उन सभी सूक्ष्म तन्तुओं की शल्य चिकित्सा करनी होगी जो मानव को मानव नहीं बनने देते हैं। मानव को मानव बनने से पूर्व इन वर्गों में बाँटने वाले तन्तु साम्प्रदायिक विषजनित तन्तु माने जाकर समूल नष्ट करने होंगे। तब होगा सामाजिक समरसता के निर्माण का स्वप्न साकार और सच्चे मानव का निर्माण भी तभी संभव होगा। "धर्म" मनुष्य को इसी अवस्था तक पहुँचाने वाली वस्तु है अर्थात् उसे मनुष्यत्व की पूर्ण पराकाष्ठा तक पहुँचाना धर्म का मनुष्य की उन्नति के प्रति वास्तविक ध्येय है।

धर्म निरपेक्षता का अनर्थ : स्वाधीनता के पश्चात मनुष्य के उसी धर्म की स्थापना भारत में होती तो यहां मनुष्यता (मानव का धर्म) के विकास और विस्तार में सहायता मिलती। किन्तु यहां विचार शून्य तत्कालीन नेतृत्व ने एक शब्द जाल रचा और भारत को धर्मनिरपेक्ष (धर्महीन, पथभ्रष्ट) राष्ट्र घोषित कर दिया। ऐसा राष्ट्र जो न तो अपनी संस्कृति के उत्थान पर बल देगा और न अपने धर्म पर बल देगा। अपितु इन दोनों से इसलिए दूर रहेगा कि इनके विकास और संरक्षण से समाज में साम्प्रदायिकता का विकास होगा। हाँ ! अन्य मत, पंथ और सम्प्रदाय (यथा मुस्लिम, ईसाई) को अपने-अपने मत, पंथ और सम्प्रदाय का विस्तार करने की खुली छूट होगी। क्योंकि यह उनका निजी मामला है। ट्रिपल तलाक वाले बिल को लेकर अल्पसंख्यक के नुमाइंदों द्वारा मुस्लिम महिलाओं पर हो रहे अमानवीय एवं बर्बर अत्याचारों को भी इन दिनों मजहबी मामला करार देकर उसी विष वृक्ष को पल्लवित एवं पुष्पित करने के मात्र प्रयास हैं, जिसमें कुछ तथाकथित इस मजहब के ठेकेदारों की दुकानों पर ताला लगने का अंदेशा है। यह दुर्भाग्यपूर्ण नहीं तो

क्या है ? **राष्ट्रघाती चिन्तन से सावधान :** इस दूषित और राष्ट्रघाती सोच का परिणाम यह निकला कि - आज हिन्दू बाहुल्य इस देश में हिन्दू ही शोषण का शिकार हो गया है। पिछले दिनों बंगाल एवं उ.प्र. के मेरठ में हुए हिन्दुओं पर अत्याचार इस बात को साबित करते हैं कि मजहबी जहर किस कदर सामाजिक वायुमण्डल को जहरीला करता जा रहा है। धर्मान्तरण का खेल आज भी जारी है। हिन्दुओं को कम करके पुनः किसी सम्प्रदाय का शासन भारत में स्थापित करने का सपना संजोया जा रहा है। स्वाधीनता और गणतन्त्र दिवस पर हम तिरंगे के नीचे खड़े होकर अपने नेतागण के मुखारविंद से उनके सम्बोधन में प्रायः एक ही वाक्य सुना करते हैं कि - मजहब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना, इस वाक्य को इतना सुनाया गया है कि हमारे तो सुनते-सुनते कान ही पक गये हैं। हाँ ! इतना अवश्य हुआ है कि कुछ लोग इसको सच भी मान चुके हैं। सच भी है कि एक झूठ को हजार बार बोला जाये तो वह सच सा ही लगने लगता है। इसलिए जब बार-बार झूठी अवधारणा को भारतीय जनसाधारण के सामने रखा गया तो बहुत से लोग इसे सच मानने लगे।

मजहब ही तो सिखाता है आपस में बैर रखना : हमारी मान्यता इसके प्रतिकूल है। हम चूंकि **"मजहब"** को धर्म का नहीं, अपितु सम्प्रदाय का पर्यायवाची मानते हैं, इसलिए मानव मस्तिष्क में उठने वाले सम्पूर्ण साम्प्रदायिक विद्वेष भरे कुंठित विचारों, हिंसक वृत्ति और अमानवीय आचरण का जनक हम मजहब को मानते हैं। इसलिए हमारी तो दृढ़ धारणा है कि- **"मजहब ही तो सिखाता है आपस में बैर रखना"** जिस कवि ने इन पंक्तियों को लिखा है कि **"मजहब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना।"** उन्होने ही एक सत्य को (आश्चर्य भरे शब्दों में) निम्न प्रकार बयान किया - **यूनान, मिस्र, रोमाँ, सब मिट गये जहां से। मगर बाकी है अब तक, नामोनिशाँ हमारा॥** इकबाल साहब को हमारे (वैदिक धर्म और इस पावन भारत देश के) अब तक बचे रहने पर आश्चर्य हुआ क्योंकि यूनान, मिस्र और रोम मुस्लिम आक्रमण के समक्ष अपने स्वर्णिम अतीत और महान सांस्कृतिक विरासत को बचा नहीं सके। हमारा प्रश्न है कि यूनान, मिस्र, रोमां को डसने वाला कौन था ? किसने उनकी सभ्यता को मिटाया? किसने उनकी संस्कृति को, उनके धर्मको, उनकी निजता को उनके गौरवपूर्ण अतीत को और उनकी राष्ट्रीय पहचान को मिटाया ? उत्तर बिल्कुल साफ है **"मजहब"** ने।

जिन लोगों के भी मस्तिष्क में इन महान देशों की सभ्यता को और संस्कृति को मिटाने का विचार आया था वो लोग मजहबी लोग थे। साम्प्रदायिक लोग थे। इस सत्य को स्वीकार करके कि कुछ अत्यन्त गौरवपूर्ण सभ्यताएँ और संस्कृतियाँ संसार में नाम मात्र को शेष रह गयी हैं या समाप्त कर दी गयी हैं, आप यह नहीं समझ पाये कि इन्हें समाप्त करने की निविदा- सिर्फ मजहबी नाम के ठेकेदारों के पास ही थी। यह वह ठेकेदार हैं जिन्होने सदा ही उन्माद का व्यापार किया है। इसकी मूल प्रवृत्ति को समझने में आप चूक कर गये- यह देखकर आश्चर्य होता है। इकबाल साहब ! आपकी लेखनी इस भेड़िये को लताड़ती और इसे मानवता का प्रथम शत्रु घोषित कर इसके वास्तविक स्वरुप को उद्घाटित करती। तब सम्भव था इसके प्रति हमारे राजनैतिक नेतृत्व की सोच बदल जाती, उसे इसकी वास्तविकता का बोध होता। **इतिहास और मजहब : इतिहास को मानव रक्त के धब्बों से कलंकित करने में मजहब की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। वर्तमान समय में उपलब्ध विश्व के ज्ञात इतिहास में जितने युद्धों का वर्णन हम पढ़ते हैं उनमें से ९० प्रतिशत मजहब के नाम पर लड़े गये युद्ध हैं।** इतिहास में कही ईसाईयत परचम लहराने के लिए किसी अन्य मजहब को खाती, डसती और निगलती दिखलाई पड़ती है, तो कहीं जेहाद के नाम पर इस्लाम की तलवार का कहर बरसाया जा रहा है। बात जिहाद की आयी है, जिसका अर्थ होता है -

"मजहब के प्रचार के लिए लड़ा जाने वाला युद्ध।"

इस अर्थ का इस अवधारणा के साथ कि **"मजहब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना"** के साथ कैसे तारतम्य स्थापित किया जाय ? वास्तव में यही जिहाद ही तो था जिसने विश्व की कितनी ही हँसती खेलती और खाती-पीती सभ्यताओं और संस्कृतियों को समूल नष्ट करा दिया। पर्याप्त साक्ष्यों के उपलब्ध होते हुए भी यदि अपराधी को दोषमुक्त कर दिया जाता है तो न्यायालय की कार्यप्रणाली संदिग्ध बन जाया करती है इसलिए अपराधी को अपराधी कह कर घोषित किया जाए और उसे दंडित किया जाए। न्याय की यही मांग हुआ करती है। जिन लोगों ने भारत में अपराधी को अपराधी नहीं माना

या नहीं मानने दिया वे स्वयं अपराधी हैं, राष्ट्रघाती है और राष्ट्रद्रोही हैं। झूठी अवधारणाओं की प्रतिस्थापना राष्ट्र की दशा और दिशा को बिगाड़ दिया करती है। आज भारत में यही तो हो रहा है। इस राष्ट्र की दशा और दिशा दोनों बिगड़ी हुई है। क्योंकि हमने इतिहास से कोई सीख नहीं ली। अपितु अपराधी को दोषमुक्त कर खुला छोड़ दिया। आज यही अपराधी **"साम्प्रदायिकता"** के रुप में एक दानव बनकर भारत की एकता, अखण्डता और निजता को पुनः चुनौती प्रस्तुत कर रहा है और हम गाये जा रहे हैं इसका स्तुतिगान- **"मजहब नहीं सिखाता ..... ।"**

साम्प्रदायिक लोगों को नहीं अपितु देशभक्तों को आरोपित किया गया। भारत के नेताओं के द्वारा इस भ्रमपूर्ण झूठी अवधारणा की प्रतिस्थापना से एक लाभ अवश्य हुआ है कि साम्प्रदायिक लोग साम्प्रदायिक नहीं रह गये हैं, उन्हें साम्प्रदायिक एकता का सूत्रधार होने का एक प्रमाण पत्र और थमा दिया गया। इसलिए उनके अमानवीय कृत्यों पर इस प्रकार लीपापोती की गयी कि आततायी और दुष्ट लोग भी भले लगने लगे। जैसे भारत में मोहम्मद बिन कासिम का पहला आक्रमण सन् १७१२ ई. में हुआ। उसके इस आक्रमण से लेकर सन् १८५७ ई. तक जब तक भारत में आधा-अधूरी मुस्लिम सत्ता रही तब तक एक **"मजहब"** के लोगों ने दूसरे सम्प्रदाय के लोगों पर जो अत्याचार ढाये, उन्हें पढ़कर अच्छे-अच्छे शूरमाओं के रोंगटे भी खड़े हो जायेंगे। किन्तु इन सभी आततायियों को साम्प्रदायिक या मजहबी शासक नहीं माना गया। क्योंकि मजहब तो आपस में बैर रखना सिखाता ही नहीं है। अब ऐसे विचारों के प्रतिपादकों से कौन पूछे कि यदि ऐसा था तो फिर किसके लिए ये लोग अत्याचार कर रहे थे ? किसके लिए वे खून बहा रहे थे ? और किसके लिए लूटपाट कर रहे थे ? हमने अपनी नग्न आंखों से इतिहास में देखा है - १. देवालयपुर (करांची) के मन्दिरों को लूटते। २. राजा दाहिर की बेटियों के साथ दुर्व्यवहार होते। ३. सोमनाथ मन्दिर को लूटते हुए और कितने ही मन्दिरों से अपार धन सम्पदा को भारत से बाहर जाते हुए। ४. कितने ही राजाओं, महान सेनानायकों, वीरों और भारतीय जनसाधारण के साथ अमानवीय अत्याचारों की अनवरत श्रंखला। ५. कितनी ही बार के रक्तपात, हिंसा के खेल और जनसंहार को। ६. अमानवीय ढंग से पाशविक अत्याचारों के साथ होने वाले धर्मान्तरण और मर्मान्तक रुप से दी जाने वाली पीड़ाओं को। ७. नंगी तलवार से निर्दयता के साथ बच्चों, बूढ़ों और महिलाओं का कत्ल और उनके साथ निन्दनीय और घृणित अपराध और अत्याचार एवं धर्मान्तरण करते हुए। यह सारा खेल किसलिए और किसके द्वारा खेला गया ? उत्तर है मजहब के द्वारा। अतः यह धारणा एक सिरे से ही अस्वीकार्य है कि **"मजहब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना"**। जो उदाहरण ऊपर दिये हैं, अथवा तथ्य उद्घाटित किये हैं ये सबके सब आज भी घटित होते रहते हैं।

कश्मीर समस्या का कारण मजहबी उन्माद : इसके उपरान्त अब कश्मीर का केसर बारूद में परिवर्तित हो गया है और उसकी वादियों की शांति आग में परिवर्तित हो गयी और ठंडी बर्फ खून की नदियों में बदल गयी। सारे घटनाक्रम का एक ही कारण है कि इस्लाम नामक मजहब को किसी दूसरे का अस्तित्व रास नहीं आ रहा है। फिर भी नई दिल्ली और श्रीनगर में बैठे हुए कुछ छद्म धर्मनिरपेक्षी तोतों की रटन्त जारी है कि - **"मजहब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना।"** कश्मीर में रोज रोज पत्थरबाजों के अत्याचारों का शिकार हमारे सुरक्षाकर्मी हो रहे हैं। वहां के नेता कभी इन भाड़े के टट्टूओं को भटके जवान बता देते हैं तो कभी बेगुनाह बताने को तुले रहते हैं। स्वतन्त्रता के पश्चात हमें अपनी नई मान्यताओं धारणाओं और सिद्धान्त के प्रतिपादन के समय अपने चिन्तन की परिधि का केन्द्र अपने राष्ट्र को बनाना चाहिए था। किन्तु इसका अपहरण मजहब ने कर लिया। जिस शत्रु को हम मार देना चाहते थे वह हमारी गलत नीतियों के कारण दूध पीकर और बलवान होता चला गया। फलस्वरुप आज राष्ट्र पुनः अपनी एकता और अखण्डता को अक्षुण्ण बनाये रखने के प्रति चिंतित दिखाई दे रहा है। इसका एकमेव कारण है कि हमने इतिहास से कोई सीख नहीं ली और शब्दों की गलत व्याख्याओं को अपनी राष्ट्रीय नीति का एक अनिवार्य ढंग बना लिया। आज इन तमाम समस्याओं का समाधान सिर्फ एक ही है कि उन्हीं लोगों का यहां वर्चस्व हो जो इस भारत भूमि को मात्रभूमि नहीं मातृभूमि माने, सारे क्रियाकलाप इसी भूखण्ड के सुख शान्ति व समृद्धि के लिए किए जाएँ। राष्ट्रद्रोह के रुप में उठने वाली विचारधारा को उसके जन्म स्थान में ही दफना दिया जाय, तुष्टीकरण की खेती खत्म हो।

- आचार्य कर्मवीर

आध्यात्मिक

ईश्वर की सर्वव्यापकता

- डॉ. बिजेन्द्रपाल सिंह

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने सुषुप्त प्रायः भारत में पुनः वेद की ज्योति प्रकाशित कर विश्व को ईश्वर के स्वरुप के विषय में ज्ञान दिया। विभिन्न मत व पौराणिक भी तो ईश्वर को उसका स्वरुप वेद विरुद्ध ही जानते थे कोई ईश्वर को चौथे सातवें आसमान पर कोई काबे में कोई केदारनाथ बद्रीनाथ में कोई शेषनाग पर कोई समुद्र में बैठा मानते आए थे और भी अनेक रुपों बताया जाता रहा था। अभी भी ईश्वर को अवतार मान भ्रम में पड़े हुए है। ऋषि ने वेद ज्ञान द्वारा भ्रान्तियों का निवारण किया।

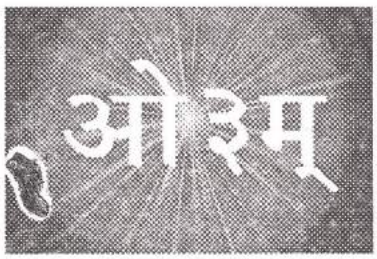

ईशावास्यमिदम् सर्व यत्किञ्च जगत्यांजगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ॥

यजु. अ. ४०

जो कुछ बात जगत में गमनशील संसार है सो यह सब ईश्वर से आच्छादित है। हे जिज्ञासु मनुष्य तू उस ईश्वर से प्रारब्ध कर्मानुसार प्राप्त धन से भोग कर। किसी के धन की आकांक्षा मत कर अथवा हे जीवात्मन् तू मत लालच कर धन किसका है। मंत्र में प्रथम पंक्ति का संकेत है कि इस गमनशील संसार में सब कुछ ईश्वर से आच्छादित है अर्थात् सब में परमात्मा है। परमात्मा संसार में व्यापक है। ईश्वर सर्वत्र व्यापक है सब देख रहा है ईश्वर के बताये मार्ग पर चल उसकी ही उपासना करनी चाहिए।

व्यापकत्व के कारण ही तो वह सृष्टि को चला व पालन कर रहा है सूर्य समय पर उदय होता व अस्त होता है दिन रात्रि होते पक्ष व वर्ष आते जाते हैं। चन्द्रमा पृथिवी के चक्कर लगा रहा है पृथिवी मंगल, वृहस्पति व शुक्र आदि ग्रह सूर्य के चक्कर लगा रहे हैं। पृथिवी अपनी धुरी पर भी चक्कर लगा रही है। पर्वत नदी समुन्द्र वन व चारों ओर हरियाली समय-समय पर रंग बिरंगे पुष्प लताएं आदि और जीवों के कार्य कलाप वही परमात्मा तो देख रहा है यह सव विधि विधान उसका ही है। यदि एक देशीय होता तो इतनी विशाल सृष्टि को जिसकी विशालता का हम अनुमान भी नहीं लगा सकते कैसे देखता व चलाता अनेक मत मतान्तर वादी व पौराणिक भ्रम की स्थिति में है, उनके अनुसार वह कैलाश पर्वत पर, समुन्द्र में शेष नाग के सिर पर, केदारनाथ या बद्रीनाथ गोकुल श्रीपुर में स्थित मानते व पवन सातवें और ईसाई चौथे आसमान पर बैठ मानते। विचारणीय प्रश्न यह है कि यदि ईश्वर साकार हो एक स्थान पर बैठा देख रहा होता तो कहां तक देख सकता था। अधिक से अधिक मील दस मील पचास मील तक परन्तु उसके आगे नहीं देख सकता था, दृष्टि अथवा नेत्र भौतिक है, जहां तक दृष्टि जा सकती है वहीं तक तो देख सकता है आगे नक्षत्र ग्रह उनसे दूर तक कैसे देख सकता है। पौराणिकों का ईश्वर तो मन्दिरों में चार दिवारी में रहता है और पूजा अर्चना के पश्चात मन्दिर के कपाट भी बन्द कर दिए जाते हैं। फिर वह उनका ईश्वर मन्दिर के अन्दर तक ही देख पाता होगा बाहर कैसे देखेगा फिर दुनियां कैसे चलेगी। यह उनकी धारणा सत्य के विपरीत है वह न साकार है न एक देशीय है वह अणु परमाणु में भी है। जहां इलेक्ट्रान चक्कर लगा रहे हैं वह उन ग्रहों को भी देख रहा है, जो सूर्य के चक्कर लगा रहे हैं। इस सृष्टि में अनेक और भी सूर्य है जो हमें दिखायी नहीं दे रहे वहां भी है यह उसका व्यापक का गुण ही तो है वह सर्वव्यापक है सृष्टि को चला रहा है। जगत ईश्वर व जीव के विषय में मन्त्र है -

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते तयोरन्य, पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाक शीति।।

ऋग. मं.१, सूक्त १६४, मं. २०

जो ब्रह्म और जीव दोनों चेतनता और पालनादि गुणों से सदृश व्याप्य व्यापक भाव से संयुक्त परस्पर मित्रता युक्त सनातन अनादि है और वैसा ही अनादि मूल रुप कारण

और शाखा रुप कार्ययुक्त वृक्ष अर्थात् जो स्थूल होकर प्रलय में छिन्न-भिन्न हो जाता है वह तीसरा अनादि पदार्थ इन तीनों के गुण कर्म और स्वभाव भी अनादि है। इन जीव और ब्रह्म में से एक जो जीव है वह इस वृक्ष रुप संसार में पाप पुण्य रुप फलों को अच्छे प्रकार भोक्ता है और दूसरा परमात्मा कार्यों के फलों को न भोक्ता हुआ चारों ओर अर्थात् भीतर बाहर सर्वत्र प्रकाशमान हो रहा है। जीव से ईश्वर ईश्वर से जीव और दोनों से प्रकृति भिन्न स्वरुप तीनों अनादि है। *स.प्र. अष्टम समु.*

ईश्वर सर्वव्यापक है सृष्टि के कण कण में है अणु परमाणु में है परमाणु के अन्दर जो इलेक्ट्रान चक्कर लगा रहे हैं और सूर्य का चारों ओर जो ग्रह चक्कर लगा रहे हैं वहां भी है आकाश पाताल और जहां हमारा मन भी न पहुंच पाता वहां भी है व्यापक होकर ही संसार को चला रहा है। एक देशीय होता तो कैसे चलता कैसे संसार को देखता फिर तो एक स्थान विशेष पर रहने से तो वहीं तक चलाने व देखने तक सीमित रहता। अतः वह सर्वव्यापक है और कण कण में है एक ही समयमें सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त है। सब कुछ देख रहा है। उस परमपिता परमात्मा की व्यापकता को जानकर ही हमें सद्कर्म करने चाहिए। सत्य व न्याय का आचरण करना चाहिए। संसार का उपकार करना चाहिए सत्य को ग्रहण व असत्य को छोड़ना चाहिए। वह ईश्वर सर्वव्यापक है उसी की उपासना हमें करनी चाहिए।

पता : चन्द्रलोक कालोनी, खुर्जा (उ.प्र.)

एक चुटकी सेहत

आंवला : इसकी एक फांक या चंद टुकड़े भोजन के ठीक बाद खाने से भोजन में मौजूद पोषक तत्वों खासतौर पर आयरन का अवशोषण बेहतर होता है। हर भोजन के बाद मुखशुद्धि के लिए आंवले का उपयोग बहुत फायदेमंद है।

तिल : भुने हुए सफेद या काले तिल के दो चम्मच दिन में कभी भी खा लें। इसे भोजन में मिलाकर भी खा सकते हैं। यह आयरन व कैल्शियम के अच्छे स्रोत है।

अलसी : एक छोटा चम्मच अलसी दिन में कभी खाएँ। इसमें मौजूद ओमेगा ३ फैटी एसिड्स दिल की सेहत और मधुमेह के रोगियों के लिए लाभदायक सिद्ध होंगे।

धर्म-धन

इस जीवन से प्यारे क्या फायदा,
जो काम किसी केआ न सके।
उपलब्धियां ही अपनी गिनाते रहे,
गीत दाता के लेकिन गा ना सके॥

भौतिक युग का नशा सर पे ऐसा चढ़ा
गुण मानवता के सारे भूल ही गये।
डांस पार्टी में दौलत उड़ाते रहे,
हाथ सहिता को अपना उठा ना सके॥

कैसे आया ना पूछो पर इतना आ गया,
सात पीढ़ी की व्यवस्था तक हो गई।
मौत उड़ा ले गई जीवन पंछी को जब,
चंद सिक्के भी साथ अपने जा ना सके॥

भौतिकी में उठे तो इतना उठ गये,
रात को भी दिन जैसा बना ही दिया।
चरित्र से गिरे तो इतना गिरते गये,
सम्मान अपना भी जग में बना ना सके॥

दौड़ते ही रहे मन में यह तृष्णा लिये,
सम्पन्नता में सब ये आगे ही रहे।
इतना उलझने सजाई है अपने लिये,
सुख चैन से भोजन कभी खा ना सके॥

ऐसा युग आ गया गौर से देख लो,
सेज सबने सजाई है स्वार्थ की।
कोई राजा या कोई सन्त देख लो,
कोई स्वार्थ से स्वयं को बचा ना सके॥

धन जरूरी बहुत है जीने के लिये,
धन बिना काम कोई भी बनता नहीं।
धर्म से कमाया अर्थ ही फलता 'मोहन'
इस बिन शान्ति मन में समा ना सके॥

- मोहनलाल चड्ढा
१७३, एमआईजी-II,
हुडको भिलाई

सैद्धान्तिक

परस्परतंत्र

- नरेन्द्र आहूजा 'विवेक'

यह ठीक है कि मनुष्य पाणिनी अष्टाध्यायी के सूक्त "स्वतन्त्र कर्ता " के अनुसार अपने द्वारा संपादित किसी भी कार्य को करने, ना करने वा किसी अन्य प्रकार से करने के लिए स्वतन्त्र होने के कारण स्वतन्त्रकर्ता कहलाता है और इसीलिए अपने द्वारा किए गए कर्मों के फल को भोगने के लिए **'अवश्वमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्'** के कर्मफल सिद्धांत के अनुसार ईश्वरीय न्याय व्यवस्था में उनका भोक्ता भी होता है। महर्षि देव दयानन्द आर्यसमाज के नियमों में बड़े स्पष्ट शब्दों में लिखते हैं **"सभी मनुष्य सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहें किन्तु प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें ।"** व्यक्तिगत स्वाधीनता की सीमा जब सामाजिक सर्वहितकारी नियमों को पालने के लिए पराधीनता में परिवर्तित हो जाती है इसे ही परस्परतंत्र कहते हैं।

वैसे तो मनुष्य का तन एक अनमोल साधन के रुप में हमें अपने पूर्वजन्मों के कर्मों के फलों के आधार पर ईश्वरीय न्याय व्यवस्था के अन्तर्गत मिलता है। इस अनमोल साधन की विशेषता भोग के साथ-साथ कर्म की स्वतन्त्रता होती है। लेकिन यदि यह कर्म स्वतन्त्रता हमें हमारे मार्ग से विमुख करके मनुष्य जीवन के लक्ष्य अर्थात् मोक्ष प्राप्ति से भटका दे तो हम **'मनुष्यरुपेण मृगाश्चरन्ति'** मनुष्य के रुप में पैदा होकर भी पशुओं के समान केवल कर्मभोग भोगते हुए विचरण करते हैं और पुनः जन्मजाल के बंधन में ही बंध कर रह जाते हैं। महर्षि दयानन्द ने इसीलिए व्यक्तिगत हितकारी नियमों में स्वाधीनता और सामाजिक सर्वहितकारी नियमों में पराधीनता की बात आर्यसमाज के दसवें नियम में लिखी है।

वैसे भी मनुष्य एकदेशीय होने के कारण अल्पज्ञ तथा अल्पशक्ति वाला होता है और उसे अपने अधिकांश कार्यों की पूर्ति के लिए दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता है। जैसे जिस अन्न से हम भोजन करते हैं भोजन के रुप में हम तक पहुंचने से पूर्व किसान, खेत में काम करने वाला मजदूर, आढ़ती, उसे परिष्कृत करने वाले और फिर उसे रसोई में पकाने के पुरुषार्थ के उपरांत ही हम यह भोजन ग्रहण कर पाते हैं। लेकिन इन सभी का पुरुषार्थ भी अपने स्वयं के लाभ के कारण ही होता है। इसका एक और उदाहरण स्वयं हमारा शरीर है। यथा ब्रह्माण्डे तथा पिण्डे मनुष्य का शरीर भी एक ब्रह्माण्ड की भांति ही उसका एक सूक्ष्म रुप है। मानव शरीर के सभी अंग भी हम मनुष्यों की भांति एक-दूसरे पर अपने कार्यों की सिद्धि के लिए निर्भर रहते हैं। जैसे लिखते समय यदि हाथों के साथ मन मस्तिष्क और आंखों का परस्पर सामंजस्य न हो तो हाथ कभी भी लिखने में सक्षम नहीं हो पायेंगे। परस्पर सहयोग और सामंजस्य की यह भावना हम सभी के एक ही आधार पर टिके होने से सिद्ध होती है। जिस प्रकार फूलों की माला में छिपा हुआ धागा बिखरे हुए फूलों को एक सूत्र में बांधकर माला के रुप में परिवर्तित कर देता है। ठीक उसी प्रकार वह सर्वव्यापी परमपिता परमेश्वर सृष्टि के कण कण में विद्यमान होकर हम सभी का आधार, ओढ़ना व बिछौना बनकर हमें एक सूत्र में बांधते हैं साथ ही साथ वह परमपिता परमेश्वर समान रुप से अपने अति सूक्ष्म रुप में हम सभी जीवात्माओं के अंदर **ईश्वर सर्वभूतानां हृददेशेऽर्जुनतिष्ठति** अर्थात् सर्वअन्तर्यामी एक सूत्र में पिरोने का काम भी करते हैं। यही हमारी परस्परतंत्रता का आधार बनता है।

यज्ञ की परिभाषा में भी देवपूजा, संगतिकरण, दान तीन आवश्यक अवयव आते हैं। यहां यज्ञ के आवश्यक अवयव के रुप में संगतिकरण हम मनुष्यों के एक सूत्र में बंधे होकर परोपकार की दृष्टि से सामाजिक सर्वहितकारी नियमों में परतंत्र होकर व्यक्तिगत हितकारी स्वतन्त्रता के बावजूद हमें समाज के रुप में जोड़े रखने के लिए परस्परतंत्रता का सिद्धान्त देते हैं। इसे यदि हम आधुनिक संविधान में देखे तो मेरे किसी भी अधिकार की सीमा किसी अन्य के

अधिकार का अतिक्रमण करने की अनुमति नहीं देती। जहां किसी अन्य नागरिक के अधिकार की सीमा प्रारंभ होती है वहीं से मेरे उसके प्रति कर्त्तव्य प्रारंभ हो जाते हैं। इसे ही परस्परतंत्रता कहते हैं। यह परस्परतंत्रता अपने स्वार्थ के परित्याग और परोपकार की भावना के स्वीकार करने से ही सिद्ध होती है। इसीलिए क्रान्तदर्शी देव दयानन्द ने **"संसार का उपकार करने को ही आर्यसमाज का मुख्य उद्देश्य"** नियमों में लिखा।

हम मनुष्य एक दूसरे के बिना नहीं रह सकते और ना ही जीवन यापन कर सकते हैं। किसी भी प्रकार का कोई रिश्ता ना होते हुए भी हम मनुष्यों को परस्परतंत्रता के सिद्धान्त के अन्तर्गत सामाजिक समरसता के लिए मित्रभाव से देखना व वर्तना होता है। वेद भगवान ने आदेश दिया **"मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे"** अर्थात् हम एक दूसरे को मित्रभाव से देखें और वर्तें। जैसे अकेला खड़ा बड़े से बड़ा वटवृक्ष आंधी में अपने इस अकेलेपन के बोझ से गिर पड़ता है लेकिन आपस में जुड़ी हुई सरोवर में पैदा हुए कच्चे कमल वृद्धि को प्राप्त होते हैं। एक दूसरे के सहयोग व आश्रय से रहने वाले मित्र बंधु, बांधव, संबंधीजन विपरीत परिस्थितियों में भी एक दूसरे का सहयोग करते उन स्थितियों को अनूकूल कर लेते हैं। परस्परतंत्रता व पारस्परिक मित्रता को विकसित करने के लिए हमें एक दूसरे पर विश्वास, एक दूसरे की भावनाओं का आदर व सम्मान करना चाहिए। अपनी गलती को बिना संकोच स्वीकार कर ठीक करते हुए क्षमा याचना करनी चाहिए। व्यर्थ की शिकायतों, निंदा, उलाहने व ताने मारने से बचना चाहिए। एक दूसरे को परस्पर उत्साहित व प्रेरित करना चाहिए तथा संकट के समय सहृदयता से सहायता करनी चाहिए। पारस्परिक मित्रता में स्वार्थ व अहंकार का कोई स्थान नहीं होता।

पारस्परिक सहयोग सहअस्तित्व और एक दूसरे के हित को ध्यान रखने की भावना ही परस्परतंत्रता में सर्वोपरि होती है। कभी सैद्धान्तिक आलोचना आवश्यक हो जाए तो वाणी की अपेक्षा हमारा जीवन स्वयं बोले अर्थात् जिन सिद्धान्तों को हम स्थापित करना चाहते हैं उन सिद्धान्तों का पहले अपने जीवन में स्वयं पालन करें। यह परस्परतंत्रता व पारस्परिक मित्रता सामाजिक समरसता एकजुटता व उत्थान के लिए अत्यंत आवश्यक है।

पता : ६०२, जी.एच. ५३, सैक्टर-२० पंचकूला

नकारः षड्विधः स्मृतः

मौनं काल विलम्बश्च प्रयाणं भूमिदर्शनम्।
भृकुटन्यमुखी वार्त्ता नकारः षड्विधः स्मृतः॥ (चीआक)

भावार्थ :- आप किसी से कुछ कहना चाहते है और वह लज्जावश (अथवा जो भी आन्तरिक कारण हों) आपको रीति से मना न कर सके और निम्नांकित छः लक्षणों को प्रदर्शित करे तो समझ लेना चाहिए कि - वह अपनी अनिच्छा ही व्यक्त कर रहा है। **मौनम् :-** आपके कुछ कहते ही सुनने वाला मौन हो जावे (चुप्पी साध लेवे) तो समझना चाहिए कि वह मना कर रहा है। **काल विलम्बश्च** - समय का उल्लंघन कर देना बात को टाल जाना। आप कोई कार्य के लिये कहें और उसका अतिक्रमण कर दे तो समझना चाहिए कि - वह निषेध ही है। **प्रयाणम् :-** किसी बात को सुनकर चल देना। यह भी अस्वीकृति सूचक ही है। **भूमिदर्शनम् :-** भूमि (जमीन) की ओर देखने लग जाना। यह अनिच्छामयी भाषा में अस्वीकारोक्ति ही मानी जानी चाहिए। **भृकुटयन्मुखी वार्त्ता :-** भौंहों को तान कर (ऊपर चढ़ाकर) त्यौरियाँ बदल कर वार्त्ता के समय अन्य मुखापेक्षी होना (अनमना होकर दूसरे की बातें सुनने लगना) भी नकारात्मक उत्तर है।

- सुभाषित सौरभ

वैचारिक

वेदप्रचार सप्ताह पर विशेष

वेद न होते तो राम, कृष्ण, दयानन्द तथा वैदिक धर्म भी न होता.

- मनमोहन कुमार आर्य

वेद शब्द का अर्थ ज्ञान है। वेद नामी ज्ञान ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद नाम के चार मन्त्र संहिताओं की संज्ञा है। यह ज्ञान कब व कहां से प्राप्त हुआ ? इसका स्रोत क्या है ? हम जानते हैं कि ज्ञान का स्रोत विद्वान हुआ करते हैं। विद्वान गुरुओं व ग्रन्थों का अध्ययन कर विचार कर व चिन्तन कर जो सत्य अनुभव करते हैं, उसका प्रवचन व ग्रन्थ लेखन कर उसे सामान्य मनुष्यों तक पहुंचाते हैं। वर्तमान में वेद चार मन्त्र संहिताओं के पुस्तक रुप में उपलब्ध है। इन पर ऋषि दयानन्द कृत प्रामाणिक आंशिक संस्कृत व हिन्दी भाष्य उपलब्ध है। अन्य आर्य विद्वानों के हिन्दी भाष्य में भी उपलब्ध है। वेदों के मन्त्रों का कर्ता, रचयिता व प्रवक्ता कौन है ? इस पर विचार करते हैं तो यह ज्ञानत होता है कि वेदों का यह ज्ञान सृष्टि के आरम्भ में प्राप्त हुआ था। इसका उल्लेख अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थ शतपथ ब्राह्मण में हुआ है। शतपथ ब्राह्मण में वर्णन है कि सृष्टि के आरम्भ में परमात्मा से अमैथुनी सृष्टि में उत्पन्न मनुष्यों में से चार ऋषियों अग्नि, वायु, आदित्य एवं अंगिरा को एक-एक वेद का ज्ञान प्राप्त हुआ था।

सृष्टि के आदिकाल में अमैथुनी सृष्टि के मनुष्यों को ज्ञान देना वाला कोई गुरु व आचार्य उपलब्ध नहीं था। आदि सृष्टि के मनुष्यों को ज्ञान सहित भाषा की भी आवश्यकता थी। इसका कारण यह है कि ज्ञान हमेशा भाषा में ही निहित होता है तथा इसे भाषा में बोलकर व ग्रन्थ लिखकर ही दिया किसी अन्य मनुष्य को दिया जा सकता है। ज्ञान देने की इससे भिन्न अन्य कोई विधि नहीं है। सृष्टि के आरम्भ में न कोई आचार्य थे और न ही गुरु थे। परमात्मा ने जिन ऋषि कोटि के मनुष्य को जन्म दिया था उनको भी ज्ञान देने वाली एक ज्ञानवान चेतन सर्वज्ञ सत्ता की आवश्यकता थी। उस समय सर्वव्यापक परमात्मा ही एकमात्र ऐसी सत्ता थी जो सर्वज्ञ एवं सर्वज्ञानमय थी।

प्रश्न है कि क्या यह ईश्वर नामी सत्ता आदि मनुष्यों को ज्ञान दे सकती थी ? इसका उत्तर हां में मिलता है। जो सत्ता बिना मनुष्य शरीर धारण किये, अपनी सर्वव्यापकता, सर्वज्ञता, निराकारस्वरुप तथा सर्वशक्तिमत्ता गुमों से इस ब्रह्माण्ड की रचना व संचालन कर सकती है, जो चेतन सत्ता अमैथुनी सृष्टि में बड़ी संख्या में स्त्री-पुरुषों व नाना प्रकार के प्राणियों के शरीरों की रचना कर सकती है, वह सत्ता अवश्य ही मनुष्यों को वेदों का ज्ञान भी दे सकती है। वह कैसे ज्ञान सकती है ? इसका तर्क एवं युक्तियुक्त वर्णन ऋषि दयानन्द सरस्वती जी ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में किया है। उन्होंने कहा है कि परमात्मा ने आदि चार ऋषियों अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा को एक-एक वेद का, क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद का ज्ञान दिया था। यह ज्ञान सर्वव्यापक एवं सर्वान्तर्यामी परमात्मा ने ऋषियों की आत्मा में उन्हें प्रेरणा करके स्थापित वा प्रदान किया था। ईश्वर से वेदज्ञान की प्रेरणा ग्रहण कर ऋषियों को वेद उसके यथार्थ अर्थों सहित स्मरण वा कण्ठस्थ हो गये थे। परमात्मा ने ऋषियों को मन्त्रों के अर्थ भी जनाये थे। इन ऋषियों ने ब्रह्मा नाम के एक अन्य ऋषि को इन चारों वेदों का ज्ञान कराया। इसके बाद ब्रह्मा जी से वेदों के ज्ञान देने, प्रचार व पठन-पाठन की परम्परा संसार में प्रचलित हुई जो महाभारत युद्ध के समय तक निर्बाद्ध रुप से चलती रही। इस परम्परा से ब्रह्मा से लेकर जैमिनी ऋषि पर्यन्त सभी ऋषि-मुनि व मनुष्य वेदों का ज्ञान प्राप्त करते रहे और उसे अपने शिष्यों के द्वारा बढ़ाते रहे। जैमिनी मुनि पर आकर

वेदाध्ययन की परम्परा में बाधायें उत्पन्न हुई और जैमिनी ऋषि-परम्परा टूट गई। देश अज्ञान के तिमिर में डूब गया। देश में अज्ञान के फैलने से सर्वत्र अन्धविश्वास, कुरीतियां एवं समाज में अनेक प्रकार की विकृतियां उत्पन्न हुई। सन् १८२४ में गुजरात के मौरवी राज्य के टंकारा नामक ग्राम ऋषि दयानन्द का जन्म हुआ, जिन्होंने मथुरा में प्रज्ञाचक्षु दण्डी स्वामी विरजानन्द सरस्वती जी से वेदांगों का अध्ययन किया है। ऋषि दयानन्द के अनेक शिष्यों ने वेदाध्ययन की परम्परा को गुरुकुलों के माध्यम से वेदांगों का अध्ययन कराकर आगे बढ़ाया। वर्तमान में भी गुरुकुलों द्वारा वेदांगों द्वारा वेदाध्ययन की परम्परा चल रही है।

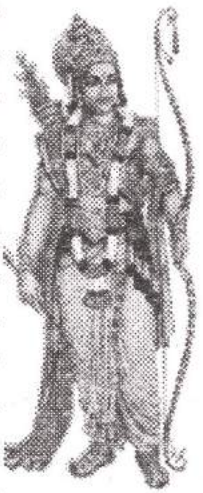

वेद ईश्वर प्रदत्त ज्ञान है और यह चार वेद सत्य विद्याओं के भण्डार हैं। प्राचीनकाल से महाभारत काल के १.९६ अरब वर्षों तक वेदाध्ययन कर देश में ऋषि-मुनि-मनीषी-योगी एवं वेदों के मर्मज्ञ विद्वान उत्पन्न होते रहें। वेदों की शिक्षा को आत्मसात कर अतीत में अनेक आदर्श महापुरुष एवं ऋषि आदि उत्पन्न हुए। महापुरुषों मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम एवं योगेश्वर श्रीकृष्ण का अग्रणीय है। हमें लगता है कि राम तथा कृष्ण का जो आदर्श जीवन था, उसके समान विश्व में विगत पांच हजार वर्ष में कोई महापुरुष उत्पन्न नहीं हुआ। महर्षि दयानन्द इसके अपवाद थे। उनका वेदों का ज्ञान प्राचीन काल के ऋषियों के समान था तथा उनके कार्य वैदिक धर्म एवं संस्कृति की रक्षा से संबंधित थे।

सृष्टि की आदि से लेकर ऋषि दयानन्द पर्यन्त उनके समान वेद ज्ञान से युक्त संघर्ष एवं आन्दोलनकारी ऋषि व संन्यासी उत्पन्न नहीं हुआ। स्वामी श्रद्धानन्द सरस्वती, पं. लेखराम, पं. गुरुदत्त विद्यार्थी, महात्मा हंसराज, स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती, आचार्य पं. चमूपति, पं. गणपति शर्मा आदि महापुरुषों का भी जीवन महापुरुषों के समान आदर्श जीवन था। इनकी श्रेणी के महापुरुष भी विश्व में शायद ही कोई उत्पन्न हुआ हो ? हमारे देश में उत्पन्न यह सभी महापुरुष वेद ज्ञान से परिपूर्ण थे। इन्होंने मानवता का अत्यन्त उपकार किया है। श्रीराम, श्री कृष्ण एवं ऋषिदयानन्द सहित वेद एवं ऋषियों के दर्शन, उपनिषद, मनुस्मृति एवं अन्य प्रामाणिक ग्रन्थों के कारण ही वर्तमान में वैदिक धर्म एवं संस्कृति जीवित है। आज भी इन महापुरुषों के जीवन चरितों को पढ़कर देशवासी प्रेरणा ग्रहण करते हैं और अपने जीवन को सार्थक एवं सफलता प्रदान करते हैं।

हमारे देश में जो अगणित ऋषि, मनीषी तथा योगी महापुरुष हुए हैं उसका कारण उनका वेद ज्ञान का अध्ययन व उसे जीवन में धारण करना था। यदि वेद न होते तो हमारे देश सहित विश्व में कहीं ऋषि, योगी, आदर्श पुरुष राम, कृष्ण तथा दयानन्द आदि महापुरुष कदापि न होते। वेद मनुष्य के कुसंस्कारों को दूर कर उसे देवतुल्य आदर्श विद्वान, मनुष्य, महापुरुष, सदाचारी, देशभक्त, परोपकारी, वीर, साहसी, ईश्वरभक्त, योगी, वेदप्रचारक, चरित्रवान, समाज-सुधारक तथा विश्व वन्द्य बनाता है। महाभारत काल तक वेदों का प्रभाव व प्रचार सारे विश्व के देशों में था। महाभारत युद्ध के बाद भारत सहित विश्व के देशों में वेदाध्ययन अप्रचलित होने से अज्ञानान्धकार उत्पन्न हुआ। इससे संस्कृत भाषा में अपभ्रंस होकर विश्व की अनेक भाषाओं का प्रचलन हुआ। अज्ञान के कारण ही विश्व में अविद्या से युक्त अनेक मत-मतान्तरों का आविर्भाव समय-समय पर हुआ। आज भी मत-मतान्तरों में निहित अविद्या व मत-मतान्तरों की परस्पर-विरोध-भावना दूर नहीं हो रही है। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि धर्म व मत-सम्प्रदाय के लोगों में सत्य को ग्रहण करने और असत्य का त्याग करने की प्रवृत्ति व गुण नहीं है। लोग आध्यात्म से दूर चले गये हैं जिसका कारण भौतिकवाद तथा सुख के साधनों में प्रवृत्ति तथा कुछ लोगों के राजनैतिक स्वार्थ है। वर्तमान में आर्यसमाज का प्रचार भी शिथिल पड़ चुका है जिसके अनेक कारण हैं। ऐसी स्थिति में कृण्वन्तो विश्वमार्यम् अर्थात विश्व को सत्यज्ञान वेद से युक्त श्रेष्ठ-गुण-कर्म-स्वभाव वाला मनुष्य बनाने का कार्य बाधित हुआ है। भविष्य में वेदों का जन-जन में प्रचार हो सकेगा, यह संदिग्ध लगता है ? यह स्थिति

अविद्यायुक्त मत-मतान्तरों के लिये सन्तोषप्रद हो सकती है परन्तु ऋषि दयानन्द के आर्यसमाज व उसके सच्चे अनुयायियों के लिए चिन्ता व दुःख का कारण है। ईश्वर ही लोगों के हृदयों में सद्-प्रेरणा कर वेदज्ञान का प्रसार करने में भूमिका निभा सकते हैं। अतः हम परमेश्वर से ही प्रार्थना करते हैं कि वह वेदज्ञान के प्रचार-प्रसार के लिये आर्यपुरुषों सहित भिन्न-भिन्न मत-मतान्तरों के आचार्यों एवं जन-जन में सत्य के ग्रहण एवं असत्य के त्याग सहित अविद्या के नाश एवं विद्या की वृद्धि की भावना को उत्पन्न करें। वेदों के ज्ञान के प्रचार-प्रसार से ही विश्व में मत-मतान्तरों का उन्मूलन होकर सत्यज्ञान व धर्म की स्थापना सहित सुख, शान्ति व कल्याण का वातावरण बन सकता है। ईश्वर वेद ज्ञान को जन-जन तक पहुंचाने में लोगों के हृदयों में प्रेरणा करें और इस कार्य को सफलता प्रदान करें। वेद ही वह ज्ञान है जिसके अध्ययन से एक सामान्य मनुष्य ऋषि, विद्वान तथा योग बनने सहित राम, कृष्ण और दयानन्द बन सकता है। भविष्य में भी वेद, वैदिक धर्म एवं संस्कृति को आत्मसात कर मनुष्य आदर्श अपने पूर्वजों के समान महापुरुष बन सकते हैं।

पता : १९६, चुक्खूवाला-२, देहरादून-२४८००१

राष्ट्र की उन्नति के लिए गृहस्थ को संवारे

संसार में समस्त संस्थाओं में गृहस्थ सबसे सर्वोत्कृष्ट एवं महत्वपूर्ण संस्था है। भूलोक की लगभग ९९ प्रतिशत आबादी इस संस्था की सदस्य है। सच्चे और चरित्रवान् व्यक्तियों के अभाव का रोना आज सर्वत्र रोया जा रहा है। विद्यार्थियों के बिगाड़ पर भी हर ओर विपुल प्रलाप किया जा जा रहा है। संन्यासी, गुरु-शिष्य, माता-पिता, पुत्र-पुत्री, राजा-प्रजा, नेता, मंत्री इन सबकी भ्रष्टता पर बहुत आंसू बहाए जा रहे हैं। यह समझ लेना चाहिए कि गृह संस्थाओं से ही सब संस्थाओं में सदस्य जाते हैं। राजा, मंत्री, कर्मचारी, नेता, अध्यापक, उपदेशक, लेखक, श्रमिक, सेवक, विद्यार्थी सब गृहस्थ के घर से ही आते हैं।

हमारे इतिहास में उत्तम संतति का निर्माण करने वाले श्रेष्ठ गृहस्थी का उदाहरण तो योगेश्वर श्रीकृष्ण और माता रुक्मणि का है कहा जाता है कि दोनों श्रेष्ठ संतान की प्राप्ति के लिए १२ वर्ष तक एकान्त स्थान पर ब्रह्मचर्य का पालन कर तपश्चर्या की, तब प्रद्युम्न जैसी तेजस्वी और महाबली उत्तम संतान उन्हें प्राप्त हुई। इसी प्रकार वीर धर्नुधारी अर्जुन की दिव्य संतान वीर अभिमन्यु की शिक्षा मां के गर्भ से ही प्रारम्भ हो गई थी। त्रेता युग में महाराज दशरथ ने पुत्रेष्टि यज्ञ करवाया और कठोर तपस्या की, जिसके फलस्वरुप राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न जैसे वीर सुयोग्य संतानों का जन्म हुआ।

हम अपने परम पावन और प्रेरक इतिहास में वर्णित नेक श्रेष्ठ परिवारों की विशेषताओं को ग्रहण कर आज की अनेक पारिवारिक समस्याओं को समाप्त कर सकते है। ऐसा कदापि न सोचे कि केवल उपदेशों और विद्यालयों में समस्या का समाधान हो सकेगा। जब तक प्रत्येक घर के चौबीसों घंटों के वातावरण को शुद्ध व संस्कारित नहीं किया जाएगा, तब तक समाज से बुराई भ्रष्टाचार समाप्त नहीं हो सकेगा। प्रत्येक गृहस्थी को यह समझ लेना चाहिए कि अच्छे जनों का निर्माण, राष्ट्र और संसार का निर्माण घरों से ही होगा। वैदिक संस्कृति से दूर होने के कारण हमारे परिवारों में विपरीत मान्यताएँ, कुसंस्कार और कलह आ रहे हैं। अच्छे नागरिकों के द्वारा ही देश की प्रतिष्ठा विश्व में फैलती है।

अंततः इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि जहां पर प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे पर संतुष्ट होकर प्रेमपूर्वक संवाद स्थापित कर आनन्दपूर्वक विचरते रहे, वह घर सचमुच धरती पर स्वर्ग है। जिस राष्ट्र की माटी से हमारा शरीर बना है, जिसका अन्न खाकर हम पले-बढ़े हुए हैं उसकी उन्नति के लिए, उसके गौरव के लिए हमारा परमकर्त्तव्य है कि हम अपने गृहस्थ आश्रम को संवारे तभी राष्ट्र उन्नति कर सकता है। ऐसा तभी हो सकता है जब हम वैदिक विचारधारा अपने जीवन में अपनाएंगे और तद्नुकूल आचरण करेंगे।

- डॉ. गंगाशरण आर्य, नई दिल्ली

जन्माष्टमी

राष्ट्रधर्म के पुरस्कर्ता-श्रीकृष्ण

- क्षितीश वेदालंकार

आर्यावर्त्त में राम और कृष्ण दो ऐसे महापुरुष हुए हैं, जिन्हें राष्ट्रपुरुष और इतिहासपुरुष की दृष्टि से अद्वितीय कहा जा सकता है। राम मर्यादा-पुरुषोत्तम हैं और कृष्ण लीला-पुरुषोत्तम हैं। पुरुषोत्तम दोनों हैं। पुरुषोत्तम अर्थात् उत्तम पुरुष, अर्थात् आर्य। आर्यत्व की दृष्टि से जीवन को उत्तमता की पराकाष्ठा तक ले जाने वाले ये दोनों ऐसे अनुकरणीय महापुरुष हैं, जिनसे युग-युगान्तर तक मानव-जाति प्रेरणा ग्रहण करती रहेगी। परन्तु इनकी स्तुति और भक्ति से ओतप्रोत मानव-हृदय ने अपनी कल्पनाशील बुद्धि के चमत्कार द्वारा इन दोनों ही महापुरुषों को मानवोत्तर से इस प्रकार मानवेत्तर बना दिया है कि तथाकथित आधुनिक बुद्धिवादी लोग इन दोनों ही इतिहास पुरुषों को अनैतिहासिक कहने में अपनी आधुनिकता मानने लगे हैं। परन्तु भारतीय जन-मानस ने अपने हृदय के सिंहासन पर इन दोनों को इतने दृढ़ भाव से विराजमान किया है कि उसे अपने परिवार या स्वयं अपने निज के अस्तित्व से भी अधिक इन इतिहास-पुरुषों की ऐतिहासिक सत्यता पर आस्था है।

ये दोनों इतिहास-पुरुष महान् स्वप्नद्रष्टा भी थे। दोनों ने ही अपने स्वप्नों को अपने जीवनकाल में चरितार्थ करके दिखा दिया। सामान्य व्यक्ति महान् स्वप्न नहीं देखा करते। कभी उत्साह में आकर वैसा कर भी बैठें तो उनके स्वप्न उनकी अपनी सीमाओं के कारण और संसार की विपरीत परिस्थितियों के कारण शेखचिल्ली के स्वप्न बनकर रह जाते हैं। पर इन दोनों महापुरुषों के जहां स्वप्न विराट् थे, वहां इनके कर्त्तव्य भी विराट् थे और उन स्वप्नों की पूर्ति भी उतनी ही विराट् थी। संसार का इतिहास असफल स्वप्नद्रष्टाओं के स्वप्नभंगों की कहानियों से भरा पड़ा है। उन असफलताओं के महासागर में इन दोनों महनीय महापुरुषों का स्वप्न-साफल्य अद्भुत ज्योति-स्तम्भ बनकर खड़ा है। संक्षेप में कहना हो तो यह कहा जा सकता है कि श्रीराम ने नेपाल के सीमावर्ती प्रदेश मिथिला से लेकर राक्षसाधिपति रावण की लंका तक-ठेठ उत्तर से लेकर ठेठ दक्षिण तक-सारे भारत को एक सूत्र में आबद्ध किया था, तो श्रीकृष्ण ने द्वारिका से लेकर मणिपुर तक-ठेठ पश्चिम से ठेठ पूर्व तक-सारे भारत को एक सूत्र में आबद्ध और एक दृढ़ केन्द्र के अधीन बना दिया कि समस्त राष्ट्र को इतना बलवान् और इतना अपराजेय बना दिया कि महाभारत के पश्चात् लगभग ४ हजार वर्ष तक अनेक विदेशी शक्तियाँ बार-बार प्रयत्न करने पर भी आर्यावर्त्त को खण्डित नहीं कर सकीं। आश्चर्य की बात यही है कि इन दोनों राष्ट्रपुरुषों के अन्य अवान्तर रूपों की चर्चा से जहाँ ग्रन्थ के ग्रन्थ भरे पड़े हैं, वहाँ इस राष्ट्रनिर्माता-रूप की चर्चा प्रायः नगण्य ही रह गई है। यह हमारी कूपमण्डूकता और मानसिक दृष्टि से बौनेपर की निशानी नहीं तो और क्या है ? ये महापुरुष जितने विराट् थे, स्वप्न की दृष्टि से भी और उसकी पूर्ति की दृष्टि से भी, हमारे लेखक और कवि उसकी तुलना में उतने ही वामन रह गए।

जिस स्वप्न की हम चर्चा कर रहे हैं, उसका बीज मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के मन में ऋषियों द्वारा बोया गया था, जबकि योगेश्वर श्रीकृष्ण का यह स्वप्न स्वोपज था। राम का जीवन आदि से अन्त तक ऋषियों की योजना, उनके मार्गदर्शन और उनके अनुशासन से संचालित था और इसीलिये वे ऐसे सरोवर की तरह मर्यादित थे, जिसमें कभी ज्वार नहीं आ सकता। होश संभालने के बाद श्रीकृष्ण जीवन के प्रत्येक क्षण में, अन्तरात्मा से प्रेरित थे, इसलिए उनका जीवन एक ऐसी पहाड़ी नदी के समान है जो उछलती-कूदती, चट्टानों को तोड़ती, दुर्गम उपत्यकाओं में अपना मार्ग बनाती और बरसात में अपने कूल-किनारों की मर्यादाओं को भंग करती लगातार आगे बढ़ती चली जाती है। विचारकों ने मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम को द्वादश

कलावतार और श्रीकृष्ण को षोडश कलावतार कहा है। उनका अभिप्राय एक को दूसरे से बड़ा या छोटा कहने से नहीं, प्रत्युत राम क्योंकि सूर्यवंशी थे और सूर्य की गति ज्योतिष के हिसाब से बारह राशियों के अन्दर होती है, इसलिए राम को भी उन्होंने द्वादश कलाओं के अवतार के रूप में सम्बोधित कर दिया, और श्रीकृष्ण क्योंकि चन्द्रवंशी थे और चन्द्रमा की कृष्णपक्ष से शुक्लपक्ष तक सोलह कलाएँ मानी जाती हैं, इसलिए श्रीकृष्ण को षोडस कलावतार कह दिया। परन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि श्रीराम को जिस युग में और जिन परिस्थितियं में अपने विराट् को स्वप्न को पूर्ण करने का सौभाग्य मिला, कदाचित् वे परिस्थितियाँ उतनी जटिल नहीं थी, जितनी श्रीकृष्ण के समय थीं। रामायणकालीन समाज तो काफी-कुछ मर्यादा में बँधा हुआ था जबकि कृष्णकालीन समाज मर्यादाओं के होते हुए भी उनको तोड़ने में ही अपनी शान समझता था। जिस युग में और जिन परिस्थितियों में श्रीकृष्ण ने सफलता प्राप्त की, उस युग में और उन परिस्थितियों में मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम होते तो क्या करते, यह केवल कल्पना का ही विषय बन सकता है।

हम में से अधिकांश लोग इतना तो जानते हैं कि हमारा एक राष्ट्र है और अतीत काल में उसके जीवन का आधार धर्म रहा है, किन्तु मानव-जीवन को सब पुरुषार्थों की प्राप्ति का साधन मानकर तद्नुसार समाज-व्यवस्था का निर्माण करके जो राष्ट्रधर्म तैयार होना चाहिए, उसकी रूप-रेखा क्या हो, उसके बारे में दिग्भ्रम ही अधिक दिखाई देता है। राष्ट्र जब जीवित रहते हैं, तो उसका आधार उनकी निश्चित जीवन-प्रणाली और उनके जीवन के उद्देश्य के रूप में उनका तत्त्वज्ञान रहता है। राष्ट्र के महापुरुष इसी तत्त्वज्ञान के आधार पर समय-समय पर इहलोक और परलोक की नीति, शत्रु -मित्र-व्यवहार, आदर्श और क्रियात्मकता की आचरणीय सीमा और व्यक्ति तथा समाज के आपसी सम्बन्धों को निर्धारित करते हैं। सर्वसाधारण उन महापुरुषों के आचरण और उनके द्वारा निर्धारित नीति का ही अनुगामी होता है। अमुक सिद्धान्त क्यों ग्रहण करने योग्य है, अथवा निश्चित सिद्धान्तों को त्याग देने से समाज का कौन-सा अहित होगा-आदि प्रश्नों की मीमांशा विचारवान् लोग निरन्तर करते रहते हैं। वे बताते हैं कि राष्ट्र और समाज का हित इन सिद्धान्तों का पालन करने से किस प्रकार प्राप्त होगा। इस प्रकार विचारवान् पुरुषों द्वारा निर्धारित सिद्धान्त ही उस राष्ट्र का तत्त्वज्ञान बन जाते हैं। उदाहरण के लिए, हिटलरकालीन जर्मनी का राष्ट्रीय तत्त्वज्ञान एक भिन्न प्रकार का था जो आर्यन रक्त की श्रेष्ठता पर आधारित था, तो स्टालिनकालीन रूस का तत्त्वज्ञान रक्त पर अवलम्बित न होकर समाज की संस्कृति को आर्थिक आधार पर नियमित करना चाहता था। इस दृष्टि से भारत के राष्ट्रीय तत्त्वज्ञान का निर्धारित करने वाला महाभारत-जैसा और कोई ग्रन्थ हैं। यह अद्वितीय राष्ट्र-ग्रन्थ है। वेद महान् ग्रन्थ हैं। वे तो सृष्टि के आदि के होने के कारण ज्ञान-विज्ञान के मूल स्रोत हैं ही, किन्तु भारतीय समाज के सभी वर्ण, सभी जातियाँ और सभी आबाल-वृद्ध नर-नारियों का जैसा समावेश इस ग्रन्थ में है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। आचार-विचार, गृह-व्यवस्था, नीति, कल्पना, व्यक्तिगत और सामाजिक व्यवहार, यहाँ तक कि हमारे रक्त के प्रत्येक कण में महाभारत के संस्कारों की छाया परिलक्षित होती है। इसलिए हम महाभारत को भारत के राष्ट्र-धर्म का प्रतिपादक ग्रन्थ कहते हैं। यह ग्रन्थ किन्हीं काल्पनिक कथाओं का पिटारा न होकर-जैसे कि पुराण हैं- उनसे भिन्न एक जीवित इतिहास-ग्रन्थ है। अतीत की सत्यगाथा, भविष्य की थाती और वर्तमान का आधार-सम्पूर्ण इतिहास इसमें समाहित है। यह सत्य है कि इतिहास के साथ-साथ यह काव्य भी है और काव्य में होनोक्ति, वक्रोक्ति, अन्योक्ति या अत्युक्ति अलंकार का रूप ग्रहण करती है। इसलिए इस महान् ग्रन्थ में कुछ अद्भुत अमानवीय और अलौकिक घटनाओं का भी वर्णन मिलता है। इस अलौकिकता के चक्कर में हमारी कितनी ही ऐतिहासिक कथाएँ दूषित भी हुई है, किन्तु सूक्ष्म निरीक्षण का यत्न किया जाय और काव्य के अलंकारों को छोड़कर खरे इतिहास का ज्ञान प्राप्त किया जाय तो कठोरतम दृष्टि से जांचने पर हमारा सप्रमाण सिद्ध होने वाला गौरवशाली इतिहास भी महाभारत में विद्यमान है।

संसार में ईश्वर के बाद यदि कोई पूजनीय है तो वह है पहले माता और फिर पिता।

जीवन-दर्शन

अवकाशानुराग

(छुट्टी मोह)

★ श्री ओमप्रकाश बजाज

विश्व के हर देश की अपनी-अपनी कोई न कोई विशेषता है। हमारे देश की सर्वप्रथम विशेषता है हमारा अवकाशानुराग अर्थात् हमारा छुट्टियों के प्रति विशेष लगाव बताया जाता है कि भारत में साल भर में मनाई जाने वाली छुट्टियों की संख्या संसार भर के देशों में सर्वाधिक है। फिर भी हमें संतोष नहीं है। किसी न किसी बहाने हम छुट्टियों में बढ़ोतरी करते ही रहते हैं किन्तु बिल्ली के गले में घंटी बांधने को कोई तैयार नहीं होता। नतीजा वही ढाक के तीन पात हो कर रह जाता है।

व्यंग्य में ही सही, किसी ने हिसाब लगाकर बताया था कि सरकारी तथाअन्य कर्मचारियों को मिलने वाले आकस्मिक, अर्जित, अस्वस्थता एवं अन्य अवकाशों, रविवार को पूरा दिन तथा शनिवार की आधे दिन की छुट्टी के साथ घोषित सार्वजनिक अवकाशों को जोड़ा जाए तो शेष कार्य दिवस बस नाम मात्र के ही रह जाते हैं। कोढ़ में खाज की कहावत को चरितार्थ करते हुए, विदेशों की अंधी नकल में, पांच दिन के सप्ताह (फाइव-डे-वीक) को और लागू कर दिया गया है।

नेताओं के निधन पर अवकाश घोषित किया जाना एक परम्परा ही बन गई है। चुनाव के दिन अवकाश रहता ही है, मेले ठेले के अवसर पर कलेक्टर द्वारा स्थानीय अवकाश घोषित किए जाते हैं। हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता की भान्ति अवकाशों की माया भी अनन्त है। हड़तालें, बंद तो इन सबके अतिरिक्त होते ही है।

बहुत बार ऐसा होता है कि कई छुट्टियाँ इकट्ठी पड़ जाती है तथा रविवार, दूसरा शनिवार अथवा फाइव-डे-वीक वाला शनिवार मिलाकर ४-४, ५-५ दिन तक बैंक, कार्यालय आदि बंद रहते है। सब काम काज ठप्प हो जाता है। भारत जैसे एक विकासशील देश के लिए यह वस्तुस्थिति असहनीय मानी जानी चाहिए। मगर "सब चलता है" की हमारी सामान्य अवधारणा आड़े आ जाती

है। किसी को जैसे इस बारे में सोचने की फुरसत ही नहीं है। यह सही है कि भारत विभिन्न धर्मावलम्बियों का देश है। हर धर्म के अपने-अपने पर्व त्यौहार है। लोग उन्हें उत्साह तथा उमंग से मनाएं यह भी वांछित है। इस हेतु अवकाश होना भी जरुरी है। भावनात्मक सोच यह भी है कि धर्म का हर त्यौहार सब धर्मों के सभी लोग मिलजुलकर मनाएँ। इसी हेतु हर धर्म के प्रमुख त्यौहारों पर सार्वजनिक अवकाश घोषित करने की परिपाटी चली आई है। किन्तु व्यवहारिक तथ्य भिन्न है। यह भी हम सब जानते हैं। एक नितांत व्यवहारिक तथा उपयोगी सुझाव जो अकसर प्रस्तुत किया जाता है यह है कि सार्वजनिक अवकाश साल भर में मात्र दो ही रखे जाएँ - (गणतंत्र दिवस २६जनवरी तथा स्वतंत्रता दिवस १५ अगस्त) शेष त्यौहारों तथा अन्य अवसरों पर हर व्यक्ति अपनी-अपनी इच्छानुसार अपना अपना उपलब्ध आकस्मिक अथवा अर्जित अवकाश लेकर अपना-अपना पर्व मनाएँ।

इसी प्रकार किसी नेता के निधन पर भी कार्यालय में शोक सभा का आयोजन कर के दिवंगत आत्मा के प्रति श्रद्धासुमन अर्पित करने के उपरांत नियमित कार्य का निष्पादन होना चाहिए पूरे दिन का अवकाश घोषित करने की परम्परा बंद हो जानी चाहिए। "भारत उदय" वास्तव में तभी सम्भव हो पाएगा जब हम स्कूली बच्चों जैसा छुट्टियों का मोह त्याग कर अधिकाधिक कार्य निष्पादन की मानसिकता बनाएंगे। वर्तमान परिस्थिति में हमारी मांग होनी चाहिए - छुट्टियाँ घटाओ। आज विकल्प हमारे हाथ में है। वरना वह दिन भी दूर नहीं जब वर्ल्ड बैंक अथवा अन्य विश्व-स्तरीय वित्तीय संस्थाओं के दबाव में हमें छुट्टियां हटाने को विवश होना पड़ जाए। ●

पता-बी-२, गगन विहार, गुप्तेश्वर, जबलपुर - ४८२००१ (म.प्र.)

विडम्बना आखिर क्या है आजादी के मायने ?

आजादी कहें या स्वतन्त्रता ये ऐसा शब्द हैं जिसमें पूरा आसमान समाया है। आजादी एक स्वाभाविक भाव है या यूँ कहें कि आजादी की चाहत मनुष्य को ही नहीं जीव-जन्तु और वनस्पतियों में भी होती है। सदियों से भारत अंग्रेजों की दासता में था, उनके अत्याचार से जन-जन त्रस्त था। खुली फिजा में सांस लेने को बेचैन भारत में आजादी का पहला बिगुल १८५७ में बजा किन्तु कुछ कारणों से हम गुलामी के बंधन से मुक्त नहीं हो सके। वास्तव में आजदी का संघर्ष तब अधिक हो गया जब बाल गंगाधर तिलक ने कहा कि **"स्वतन्त्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है"**। अनेक क्रांतिकारियों और देशभक्तों के प्रयास तथा बलिदान से आजादी की गौरव गाथा लिखी गई है। यदि बीज को भी धरती में दबा दें तो वो धूप तथा हवा की चाहत में धरती से बाहर आ जाता है क्योंकि स्वतन्त्रता जीवन का वरदान है। व्यक्ति को पराधीनता में चाहे कितना भी सुख प्राप्त हो किन्तु उसे वो आनन्द नहीं मिलता जो स्वतन्त्रता में कष्ट उठाने पर भी मिल जाता है। तभी तो कहा गया है कि- **पराधीन सपनेहूँ सुख नाही।**

जिस देश में चन्द्रशेखर, भगतसिंह, राजगुरु, सुभाषचन्द्र, खुदीराम बोस, रामप्रसाद बिस्मिल जैसे क्रान्तिकारी तथा गांधी, तिलक, पटेल, नेहरु जैसे देशभक्त मौजूद हों उस देश को गुलाब कौन रख सकता था। आखिर देशभक्तों के महत्वपूर्ण योगदान से १४ अगस्त की अर्धरात्रि को अंग्रेजों की दासता एवं अत्याचार से हमें आजादी प्राप्त हुई थी। ये आजादी अमूल्य है क्योंकि इस आजादी में हमारे असंख्य भाई-बन्धुओं का संघर्ष, त्याग तथा बलिदान समाहित है। ये आजादी हमें उपहार में नहीं मिली है। वंदे मातरम् और इंकलाब जिंदाबाद की गर्जना करते हुए अनेक वीर देशभक्त फांसी के फंदे पर झूल गए। १३ अप्रैल १९१९ को जालियावाला हत्याकांड, वो रक्त रंजित भूमि आज भी देशभक्त नर-नारियों के बलिदान की गवाही दे रही है।

आजादी अपने साथ कई जिम्मेदारियां भी लाती है, हम सभी को जिसका ईमानदारी से निर्वाह करना चाहिए किन्तु क्या आज हम ७३ वर्षों बाद भी आजादी की वास्तविकता को समझकर उसका सम्मान कर रहे हैं ? आलम तो ये है कि यदि स्कूलों तथा सरकारी दफ्तरों में १५ अगस्त न मनाया जाए और उस दिन छुट्टी न की जाए तो लोगों को याद भी न रहे कि स्वतन्त्रता दिवस हमारा राष्ट्रीय त्यौहार है जो हमारी जिन्दगी के सबसे अहम् दिनों में से एक है।

एक सर्वे के अनुसार ये पता चला कि आज के युवा को स्वतन्त्रता के बारे में सबसे ज्यादा जानकारी फिल्मों के माध्यम से मिलती है और दूसरे नम्बर पर स्कूल की किताबों में जिसे सिर्फ मनोरंजन या जानकारी ही समझता है। उसकी अहमियत को समझने में सक्षम नहीं है। ट्विटर और फेसबुक पर खुद को अपडेट करके और आर्थिक आजादी को ही वास्तविक आजादी समझ रहा है। वेलेंटाइन डे को स्वतन्त्रता दिवस से भी बड़े पर्व के रुप में मनाया जा रहा है।

आज हम जिस खुली फिजा में सांस ले रहे हैं वो हमारे पूर्वजों के बलिदान और त्याग का परिणाम है। हमारी नैतिक जिम्मेदारी बनती है कि मुश्किलों से मिली आजादी की रुह को समझें। आजादी के दिन तिरंगे के रंगों का अनोखा अनुभव महसूस करें इस पर्व को भी आजाद भारत के जन्मदिवस के रुप में पूरे दिल से उत्साह के साथ मनाएँ। स्वतन्त्रता का मतलब केवल सामाजिक और आर्थिक स्वतन्त्रता न होकर एक वादे का भी निर्वाह करना है हम अपने देश को विकास की ऊँचाईयों तक ले जायेंगे।

भारत की गरिमा और सम्मान को सदैव अपने से बढ़कर समझेंगे। रविन्द्रनाथ टैगोर की कविताओं से कलम को विराम देते हैं-

हो चित्त जहां भय-शून्य, माथ हो उन्नत
हो ज्ञान जहाँ पर मुक्त, खुला यह जग हो
घर की दीवारें बने न कोई कारा
हो जहां सत्य ही स्रोत सभी शब्दों का
हो लगन ठीक से ही सब कुछ करने की
हों नहीं रूढ़ियाँ रचती कोई मरुस्थल

पाये न सूखने इस विवेक की धारा
हो सदा विचारों, कर्मों की गतो फलती
बातें हों सारी सोची और विचारी
हे पिता मुक्त वह स्वर्ग रचाओं हममें
बस उसी स्वर्ग में जागे देश हमारा

सौजन्य : ऋषि कुमार आर्य, रायगढ़

युवाओं की आजादी

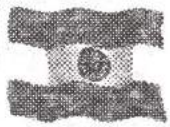

अमर शहीदों की लहू की, कीमत ही ना जानी है।
हम आजाद हुए लेकिन, आजादी ना पहचानी ॥

बचपन आज शहीद हो रहा, क्रिकेट के मैदानों पर,
और बुढ़ापा खांस रहा है, मदिरा की दुकानों पर,
विलासिता की फिल्म देखने बैठी हुई जवानी है॥
हम आजाद हुए ..... ॥

मिली सभ्यता बड़े घरों की, ऊंची ऐड़ी पर चलते,
आज नग्नता वक्ष चढ़ी है, गोदी में पलते-पलते,
कितनी आजादी पाई, और कितनी की मनमानी ॥
हम आजाद हुए ..... ॥

विद्या की अर्थी होते हैं, कालेजों स्कूलों में,
कफन ज्ञान का दफन हुआ, वर्तमान की मूलों में,
गुरु-गोविन्द नशे में दोनों, बढ़िया नींव रखानी है॥
हम आजाद हुए ..... ॥

मरने के रस्ते-सस्ते, पर राह मिली ना जीने की,
किस्मत भी महंगी पड़ती, आज कीमत घटी पसीने की,
मजदूरी की बेटी चिथड़े पहने हुई सयानी है॥
हम आजाद हुए ..... ॥

यौवन की पूंजी पाकर भी, हमने सब कुछ खोया है,
निर्धन को फूटपाथ दिया, पैसा कुर्सी पे सोया है,
यह सब तो पहले भी था, ये झांकी रही पुरानी है॥
हम आजाद हुए ..... ॥

इस आजादी से पहुंचे हम, गहरे और रसातल में,
माटी की अब खायें, तो भारत बदलेंगे पल में,
सुनो युवाओं ! कदम बढ़ाओं ! मौसम अब तूफानी है॥
हम आजाद हुए ..... ॥

रचयिता : डॉ. वेदप्रकाश व्यास, व्यास मेडिको, गैरतंग, जिला-रायसेन (म.प्र.)

संस्कृति चिन्तन

जब तक वेद व्यास न होगा, कोई तुलसीदास न होगा,
परम्परा का भास न होगा, तब तक बन्धु विकास न होगा।
अन्तर की धूमिल अरुणाई, तन्द्रामय जब तक तरुणाई,
मरे हुए मन के मंदिर में, भारत माँ का वास न होगा।

सांस्कृतिक

यज्ञों के द्वारा जीवन को स्वर्गमय बनावें.

- डॉ. अशोक आर्य

यज्ञ पर्यावरण की शुद्धि का सर्वोत्तम साधन है। जहां प्रतिदिन यह यज्ञ होते हैं, वहां का वातावरण शुद्ध पवित्र हो जाता है। रोगाणु नष्ट हो जाते हैं तथा सब प्रकार के कष्ट क्लेषों से मुक्त होकर प्राणी का जीवन स्वर्गिक आनन्द से भर जाता है। इस बात को मन्त्र द्वारा इस प्रकार स्पष्ट किया जा रहा है -

भुताय त्वा नारातये स्वरभिविख्येषं दृ ँ हन्तां दुर्याः। पृथिव्यामुर्वन्तरिक्षमन्वेमि पृथिव्यास्त्वा नाभौसादया, म्यादित्याऽउपस्थेऽग्ने हव्य ँ रक्षा ॥ यजुय १.११ ॥

अर्थात् मन्त्र में यज्ञ शेष के महत्व को दर्शाया गया था। इसमें बताया गया था कि यह न केवल प्रसाद ही है बल्कि सुख समृद्धि को बढ़ाने वाला होता है। इसका ही विस्तार करते हुए यहां सात बिन्दुओं पर प्रकाश डालला है, मन्त्र बता रहा है कि

(१) त्याग भाव से भोगो :- मन्त्र यह कह रहा है कि मैं तुझे प्राणी मात्र के हित के लिए ग्रहण करता हूँ। मन्त्र ने इस प्रकार प्रकट किया है कि हम जो भी कार्य करते हैं उसमें सार्वजनिक हित की बात होना चाहिए। केवल एक व्यक्ति का जिसमें हित होता है ऐसा काम करने का कोई लाभ नहीं है। इस लिए ही मन्त्र कह रहा है कि "मैं तुम्हें प्राणी मात्र के लिए ग्रहण करता हूँ अर्थात् जीव को सदा प्राणी मात्र के हितार्थ ही कार्य करना चाहिये। मन्त्र आगे उपदेश देता है कि मैं तुझे इसलिए ग्रहण नहीं कर रहा कि मैं तुझे कुछ देना नहीं चाहता। मैं तुझे वह सब कुछ देना चाहता हूँ जिसकी तुझे आवश्यकता है। मैं तुझे ग्रहण ही देने के लिए कर रहा हूँ। न देने का तो प्रश्न ही पैदा नहीं होता। मैंने तुझे ग्रहण किया है तो इसलिए कि तेरे अन्दर परोपकार की भावना है, तेरे अन्दर दूसरों की सेवा, दूसरों की सहायता की भावना है। तेरे अन्दर यज्ञ की भावना है। इसका भाव ही परोपकार है, दूसरों की सहायता होता है। सहायता भी ऐसी कि हम जिसकी सहायता कर रहे हैं, उसको हम जानते ही नहीं, इसलिए उस पर कभी किसी प्रकार का एहसान न जता सकें यह ही कारण ही कि हम किसी को भी भोग के लिए योग के लिए ही ग्रहण करते हैं, अपने मित्रों की श्रेणी में रखते हैं।

प्रभु ने हमारे भोग के लिए जो भी पदार्थ बनाए हैं, जो भी फल फूल या वनस्पतियां पैदा की हैं, वह सब जीव मात्र के लिए हैं। उनका हम उपभोग अवश्य ही करें, किन्तु मन्त्र आदेश दे रहा है कि हम इन भोगों को त्याग भाव से भोगें न की स्वार्थ भाव से। भाव यह है कि प्रभु ने हमारे उपभोग के लिए यह जो फल पैदा किये हैं, यह जो फूल पैदा किये हैं, यह जो वनस्पतियां पैदा की है, यह सब जीव मात्र के उपभोग के लिए हैं। जितना उदर पूर्ति के लिए आवश्यक है। हे जीव ! उतना ही तेरा है, उतने का ही उपभोग कर, इतने से ही त्रप्ति कर। शेष जो कुछ है, वह अन्य प्राणियों के लिए है, लालच मत कर, इसे संग्रह न कर।

(२) यज्ञमय जीव से सर्वत्र स्वर्ग मिलता है : यह यज्ञ ही है कि जो सबका कल्या करता है। सब को सुखी बनाता है तथा स्वर्गिक आनन्द देता है। इससे मनुष्य का ही नहीं जीव-जन्तुओं का भी पोषण होता है। परोपकार का नाम यज्ञ है। दूसरे की सेवा का नाम यज्ञ है। इसलिए ही तो कहा गया है कि प्रतिदिन यज्ञ करता है उसके सब और स्वर्ग ही स्वर्ग होता है। उसके आसपास का पर्यावरण शुद्ध व पवित्र हो जाता है। रोग कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। जब व्यापारियों का नाश हो जाता है तो शेष रहा सुख। बस यह ही उसे मिलता है। इसका नाम ही स्वर्ग है। अतः यज्ञशील प्राणी को सदा स्वर्गिक आनन्त मिलता है।

यज्ञ करने वाले प्राणी का उभयलोक सदा कल्याण कारक होता है। हम जानते हैं कि जब वस्तुओं तथा राक्षसों में उत्तमता के लिए प्रतिस्पर्धा हो गयी तो परमपिता ने राक्षसों के हाथ कुहनी के पास से बंधा दिये ताकि मुंडे नहीं तथा उनके सामने खाना परोस दिया और खाने का आदेश दिया। राक्षस तो होते ही राक्षस हैं। वह अपना भोजन दूसरे को कैसे खिलाने का साहस करते ? दूसरे से सहयोग की तो

उनमें कभी भावना ही नहीं होती। बस भोजन का ग्रास उठाया तथा ऊपर ले जा कर अपने मुख के सामने कर के छोड़ दिया। परिणाम स्वरुप कहीं कुछ थोड़ा सा मुंह में गया। शेष का कुछ भाग गालों पर गया, सब आंखों में, कुछ कानों में। इस प्रकार कोई लंगूर बन गया, कोई कुत्ता। इन्हें देखने वाले हंसने लगे।

जब इस प्रकार से ही देवों को बांध कर भोजन दिया गया तो वह देव लोग एक दूसरे के सामने बैठ गए तथा एक दूसरे को भोजन करवा कर अपने आप को भी तृप्त किया तथा दूसरों को भी किया और किसी प्रकार की हानि भी नहीं हुई। बस इसका नाम ही यज्ञमय जीवन है। इसका नाम ही स्वर्गिक आनन्द है। इसलिए वेद मन्त्र कहता है कि केवल अपने तक ही सीमित न रहो बल्कि अन्यों के सुखमय जीवन बनाने के साधन भी पैदा करो।

(३) यज्ञमय जीवन से हमारे शरीर, मन व मस्तिष्क प्रबल हों : इस यज्ञ से हमारे परिवार का संगठन होने से हमारे घर मजबूत हो जाते हैं। हमारा सामाजिक जीवन अटूट हो जाता है। जहां प्रतिदिन यज्ञ होता है, वहां भोग की प्रवृत्ति आ ही नहीं पाती। क्योंकि यह भोग प्रवृत्ति का विनाशक होता है। प्रतिबन्दक होता है। इस प्रवृत्ति के प्रतिबन्ध से ही हमारे शरीर, हमारे मन तथा हमारे मस्तिष्क दृढ़ बनते हैं। जब घर में यज्ञमय भावना न होगी तो परिवार के सदस्य अपने स्वार्थ को ही सामने रखेंगे, जिससे घर में सदा लड़ाई-झगड़ा, कलह-क्लेष ही बना रहेगा। ऐसी अवस्था में चित्त का शान्त होना, प्रसन्न होना तो सम्भव ही नहीं होता, सबकी खुशी गायब हो जाती है। इसका नाम ही नरक है। इस अवस्था में अन्त कैसे होता है ? पूरे परिवार के नाश के रुप में।

(४) यज्ञवृत्ति से हृदय विशाल बनता है : प्रभु कहते हैं कि मैं उस व्यक्ति को ही प्राप्त होता हूं जिसमें यज्ञवृत्ति हो। हमारा यह तो शरीर है वास्तव में यह पृथिवी के समान है। हम इसे ऐसा भी कहते हैं कि इस शरीर में हमने प्रत्येक शक्ति का विस्तार किया है। प्रभु कहते हैं कि मैं उस विशाल हृदय रुपी अन्तरिक्ष को हमारी इस यज्ञ रुपी अनुकूलता के कारण, उत्तमता के कारण प्राप्त करता हूँ। भाव यह है कि इसके कारण जब पवित्रता आ जाती है तो वह प्रभु उसमें आकर विराजमान हो जाते हैं। इतना ही नहीं यज्ञ की इस भावना से हमारे हृदयों में विशालता आती है। परोपकार व दूसरे के सहयोग की इच्छा शक्ति आती है।

(५) यज्ञ से ही हम फलते फूलते हैं : जो जीव यज्ञमय जीवन वाला होता है उसके लिए प्रभु प्रेरणा देते हुए कहते हैं कि हमारे इस मानव शरीर रुपी भवन्की नाभी यह यज्ञ ही है। यही इसका केन्द्र है तथा परमपिता परमात्मा ने ही हमें इसमें स्थापित किया है। गीता भी तो इस तथ्य पर ही प्रकाश डालते हुए कह रही है कि इस यज्ञ से तुम फलो फूलो। तुम्हारी सबो मनोकामनाओं को पूर्ण करने वाला हो। भाव यह कि इससे ही सब कामनाएँ, सब इच्छाएं पूर्ण होती है।

(६) आदीन व दिव्य गुणों वाले बनें : आदीनता से युक्त बनें। आदीन पुरुष मैं तुझे अदिति को सौंप रहा हूँ। तूने जो कल्याण के कार्य किए हैं, उसके कारण तेरा अदिति के पास निवास होना आवश्यक है। इस कारण ही मैं तुझे अदिति को सौंप रहा हूँ। उसकी गोद में दे रहा हूँ। इस अदिति की गोद में जा कर तू आदीन बनता है। इसकी गोद में जा कर तू दिव्य गुणों का स्वामी हो जाता है। हां ! जब तू हीन भावना से ऊपर उठ गया है तो इसका भाव यह नहीं कि मैं अभिमानी बनकर, घमण्डी बन जाऊँ। इसका भाव है कभी किसी के आश्रित न रहना, रोगी न रहना आदि। प्रभु कहते हैं कि यह यज्ञमय इससे बचने से ही मेरे में आदीनता तथा विनीतता की सुन्दर भावना आ जाती है। इस शरीर में इनका समन्वय हो जाता है।

(७) यज्ञ से हम कभी अलग न हों : प्रभु इस मन्त्र के माध्यम से हमें उपदेश करते हुए मन्त्र के अन्तिम भाग में हमें उपदेश कर रहे है कि हे जीव ! तू आगे बढ़ने वाला है। तूने इसका स्वयं प्रयोग करके इसके लाभ को भी आत्मसात कर लिया है। तो भी तू सदा इस बात को याद रखना कि तूने इस हव्य की रक्षा करनी है। इसे बनाए रखना है। तूने अपने जीवन को खूब यज्ञमय बनाया है। इसे यज्ञमय ही बनाय रखना। इस वाक्य को अपने लिए आदर्श वाक्य ही बनाए रखना। इस आदर्श वाक्य के आधार पर ही तू सदा परोपकार करते रहना, दूसरों की सहायता करते रहना, दूसरों का मार्गदर्शन करते रहना तथा यज्ञमय जीवन से कभी अलग मत होना।

पता : १०४, शिक्षा अपार्टमेंट, कौशांबी-२०१०१०. जिला गाजियाबाद (उ.प्र.)

मैं तिरंगा

मूक खड़ा हूँ दशकों से, लो आज कहो तो बोल दूं।
था दर्द समेटा सीने में, लो आज कहो तो खोल हूँ॥

☆

मैं तिरंगा फकत आज कुछ रुपयों का व्यापार हूं।
मान लिया पंद्रह छब्बीस दो दिन का ही त्यौहार हूं॥

☆

राजनीति के चूल्हे में, अब मुझकों सेंका जाता है।
गद्दी की रोटी ना पके, तो कोने में फेंका जाता है॥

☆

रंग मेरा निर्दोष है, फिर क्यों अपनों की ही खलता हूं?
बाहर तो भयहीन खरा, पर घर में ही मैं जलता हूँ॥

☆

एक पैर पर खड़ा हूँ, अपने तो दूजा काट गए।
बटवारे की जंग में, मां को भी आधा बाट गए॥

☆

वह दृश्य देख रणभूमि का, मन मेरा भी घबराता है।
केसरी हरा के युद्ध में, जब श्वेत कफन धर जाता है॥

☆

हर बार जब भी वीर शहीद के, अंग में लिपटा होता हूँ।
बाहर से खामोश रहूं, पर अंदर अंदर रोता हूं॥

☆

जिंदा हूं ताकि घर में अपने, अमन शांति बनी रहे।
भगत सिंह अभिनंदन वाली, शौर्य क्रांति बनी रहे॥

☆

देखी है मैंने बारुदों की, साजिश अमन डूबा ने की।
घर में ही अपने पाक हटा, नापाक इरादे लाने की॥

☆

देखा है मैंने सुनसान सड़कों में होते पापों को।
मन तो करता रखा बना दूं, आस्तीन के सांपों को॥

☆

आज भी मैं कुछ अलगावों की, सुलगाने की भूख हूं।
निकले ना मुख से आह कभी, है शुक्र खुदा मैं मूंक हूं॥

रचियता : प्रणव कुमार (११वीं),
डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, छाल, रायगढ़ (छ.ग.)

रक्षाबंधन के अवसर पर

स्नेह भरे दो तार

भाई से बहनों ने पूछा, कर लोगे स्वीकार ? स्नेह भरे दो तार।

❀

इन धागों को लेकर भाई, तुमको प्राण जगाने होंगे।
कष्ट कठिन अन्तर बहनों के, तुमको आज भगाने होंगे॥
तुम्हें जलाने होंगे दीप घोर गहन तम की बेला में,
और विलासी सारे क्षण यह, तुमको स्वप्न बनाने होंगे॥
बड़ा कठिन व्यवहार! है बोलो स्वीकार? स्नेह भरे दो तार॥

❀ ❀

एक ओर बहनों की लज्जा, पैसे के बदले में बिकती।
जलती, लुटती, मिटती, रोती जीवन भर ज्वाला में बिकती॥
और हर्ष में मतवाले तुम, भूल चुके यह करुण कहनी।
सोच रहे हो इसी लहर में, पागल सारी दुनियां बहती॥
उठा सकोगे भार? तो लो यह पतवार! स्नेह भरे तो तार॥

❀ ❀ ❀

बन्धु! नहीं भिक्षा की झोली, यह तो है कर्त्तव्य पुकार!
बहन तुम्हारे सम्मुख आयी, तुम उसको दोगे दुत्कार॥
आज तुम्हारा सारा जीवन और सुखी संसार मांगती,
रक्षा के हित पास तुम्हारे, आ कबती हूँ मैं मनुहार॥
जोड़ो टूटे तार! यही बने श्रृंगार। स्नेह भरे दो तार॥

सौजन्य - श्रीमती दीपाली वर्मा, दुर्ग (छ.ग.)

-: सूचना :-

प्रदेशस्थ समस्त आर्यसमाजों को सूचित किया जाता है कि आगामी १५ अगस्त २०१९ श्रावणी उपाकर्म (रक्षाबंधन) से लेकर जन्माष्टमी २३ अगस्त २०१९ पर्यन्त वेद प्रचार सप्ताह उत्साह- पूर्वक बड़ी धूमधाम से मनाएँ। मंत्री, छत्तीसगढ़ प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा

अभियानात्मक

स्वदेशी से स्वावलम्बी गाँव

- अनिल आर्य

स्वदेशी का अर्थ यह है कि हम अपने आसपास के प्रदेश, वस्तु, स्त्रोतों का उपयोग, सेवा एवं जतन करें, देश की आजादी के आन्दोलन में महात्मा गांधी जी ने विदेशी वस्तु का बहिष्कार व स्वदेशी वस्तुओं का स्वीकार करना सिखाया, परन्तु आजादी के ७३ साल बाद हम इससे विपरीत पाते हैं।

विदेशी वस्तु, विचार, वस्त्र, विदेशी भाषा, भेषज, विदेशी दवा, भोजन, भजन, विदेशी खाद, कीटनाशक व तेलादि से देश के प्रतिवर्ष लगभग १५ से २० लाख करोड़ रुपये के धन की बर्बादी हो रही है। हमें स्वदेशी के रास्ते पर चल कर देश के धन, संसाधन, बचपन, यौवन व संस्कारों को बचाना है और स्वदेशी वस्तु, विचार, वस्त्र, स्वदेशी भाषा, स्वदेशी दवा व चिकित्सा, स्वदेशी गोबर आदि का खाद व पशुओं के गोमूत्रादि से बने कीटनाशकादि का प्रयोग करके तथा तेल आदि के क्षेत्र में भी देश को आत्मनिर्भर बनाकर अपनी आवश्यकताओं की तो पूर्ति हमें करनी ही है, साथ ही स्वदेशी उद्योगों के द्वारा हमें इतना उत्पादन बढ़ाना है कि हम औद्योगिकीकरण व वैश्वीकरण का लाभ उठाकर विश्व में सर्वाधिक निर्यात करने वाला देश तो बनेंगे ही साथ ही स्वदेशी से अपनी देश की बचत व विदेशों में निर्यात की बढ़त से हम देश का आर्थिक दृष्टिकोण से कम से कम २५ से ३० लाख करोड़ रुपये प्रतिवर्ष बचा पायेंगे और कुछ ही दिनों में भारत को विश्व की सबसे बड़ी आर्थिक शक्ति के रुप में खड़ा कर पायेंगे, नित्य प्रयोग की विदेशी वस्तुएं जैसे साबुन, शैम्पू, टूथपेस्ट, क्रीम, पाउडर, जूते चप्पल व वस्त्रादि का पूर्ण बहिष्कार करेंगे तथा कोल्डड्रिंक्स आदि के स्थान पर स्वदेशी नींबू पानी की शिकंजी व अन्य स्वदेशी स्वास्थ्यवर्धक पेयों को प्रोत्साहन देंगे।

स्वदेशी कम्पनियों की वस्तुओं को गांवों तक पहुंचायेंगे तथा साथ ही एक बड़ी कार्ययोजना के तहत गांव या गांव के आसपास बनी स्वदेशी वस्तुओं का ही प्रयोग करेंगे। यदि स्वदेशी उत्पादों की गुणवत्ता व मूल्य आदि में कही कोई दोष होगा तो उसको भी परस्पर सहयोग व सद्भाव से दूर करेंगे। इस प्रकार प्रत्येक गांव, जिला व पूरे भारत को हमें स्वदेशी से स्वावलम्बी अथवा आत्म निर्भर बनाना है तथा विदेशी वस्तुओं व विचारों के मिथ्याकर्षण से देश को मुक्ति दिलानी है। स्वदेशी अपनायेंगे-देश को बचायेंगे के संकल्प को पूरे देश में जागृत करना है। स्वदेशी व विदेशी कंपनियों की सूची भी हमें करोड़ों लोगों तक पहुंचानी है।

स्वदेशी चीजों में लगने वाला कच्चा माल गांव में ही उत्पादित होगा, जैसे कपड़े के लिए कपास, तेलों के लिए तेलबीज, कुछ चीजें (जैसे इलेक्ट्रानिक वस्तुयें), जिनके प्लांट डालने में ज्यादा खर्च आता हो, वह कुछ गांव मिलकर डालेंगे। विदेशी कंपनी के जाल से मुक्त होकर भारत स्वदेशी, सहकार, स्वावलंबन अपनाते ही फिर से आर्थिक स्वयंपूर्णता पायेगा, जिससे हमारे गांवों के युवक गांवों में ही सेवा करेंगे। शहर की मिथ्य चमक से हटकर अपना हुनर या अनुभव गांव हित में लगाकर गांव को समृद्ध करेंगे, इससे शहरों का बढ़ना थमकर गांव एवं शहरों में खुशहाली आयेगी।

वृक्षारोपण :- वृक्ष हमारे जीवन व जगत के रक्षक हैं, अतः हमारा जीवन पूरी तरह से पेड़-पौधों पर निर्भर है। जीवन रक्षा, पर्यावरण की रक्षा, सूखा, बाढ़, गर्मी व अन्य भंयकर खतरों से हम तभी बच सकते हैं, जब हमारे आस-पास पेड़ होंगे। हमने जंगलों व गांव के पेड़ों की बेरहमी से कटाई की है और इसी के परिणामस्वरुप आज जलवायु परिवर्तन व वर्षा की कमी जैसी भयावह समस्या पैदा हुई है।

सोना, चांदी, बड़ी गाड़ी व बड़े भवन हम विकास व विलासिता के नाम पर तुरन्त खरीद सकते हैं या इनको बना सकते हैं, परन्तु जिन वृक्षों के आधार पर जीवन चल रहा है, उनको लगाने व बड़ा करने में कम से कम १५ से २० वर्ष लगेंगे, तो आइए अभी से भारत के स्वर्णिम भविष्य को बनाने व अपनी भावी पीढ़ियों को बचाने के लिए आज से ही जन्मदिन, शादी की वर्षगांठ, पितरों की स्मृति व पवित्र पर्वों पर वृक्ष लगाने का संकल्प लीजिए। अपने

मित्रों व परिजनों को भी खुशी के मौकों पर औषधीय गुणायुक्त नीम, अर्जुन, आंवला आदि पेड़ गिलोय, तुलसी व घृतकुमारी आदि जड़ी-बूटियों के पौधे उपहार में दें। वृक्ष का यह महत्व जानकर सन्त तुकाराम महाराज जी ने यह कहा था कि **"वृक्षवल्ली आम्हा सोयरी, वनचरे।"**

इस देश की संस्कृति ही विश्व का परिधान है,
देशप्रेम ही देशभक्ति के भावों की पहचान है,
तिरंगे के देश का वासी बड़ा भाग्यवान है,
यह सब भगवान का दिया हुआ वरदान है।
हर देशवासी तिरंगे का करता सम्मान है,
और हर कोई करता इसका गुणगान है,
क्योंकि यह हर किसी की शान हैं,
इसका निर्माता बुद्धि, कला में बलवान है,
साथ ही निर्माता का निर्माता भगवान है।

हम हमारे घर बड़े-बड़े तो बना लेते हैं पर पेड़ों के लिये कुछ भी जगह नहीं छोड़ते, जो घर के आजू-बाजू में जगह होती है, उसका भी हम सिमेंटीकरण कर देते हैं, जिससे कुओं व तालाबों आदि का जलस्तर कम हो जाता है।

याद रखें घर छोटा जरुर बनाये पर घर के आजू-बाजू में नीम, गुलमोहर, आंवला आदि पेड़ जरुर लगायें, जिससे जल पीने के लिए, खेतों, गांव के लिए हरदम उपलब्ध रहेगा। गांव में जो बगीचे हैं, उनमें दिखावटी पौधे न लगाकर बड़े-बड़े पेड़ लगायें, जिससे हम जंगल बगीचा कह सकते हैं, जिससे गांव हरदम हरे-भरे रहेंगे व गांव में पानी का जल स्तर हरदम अच्छा रहेगा। गांव को पेड़ के प्रति रिश्तेदारों के समान प्यार दिखाना चाहिए, हर बच्चे को, घर को कम से कम एक पेड़ के पालन-पोषण करने की जवाबदारी अवश्य देनी चाहिए। जो पेड़ों के प्रति अच्छा कार्य करेगा उसे ग्राम सभा द्वारा पुरस्कृत करना चाहिए।

शिक्षा में गुणात्मक सुधार :- महात्मा गांधी का स्पष्ट मानना था कि मात्र अक्षर ज्ञान ही शिक्षा नहीं है। वह तो शिक्षा का मात्र एक अंग है। उसके साथ संस्कार व स्वदेशी के दर्शन पर आधारित शिक्षा जिसमें स्वदेशी भाषा, वस्तु, वस्त्र, विचार, स्वदेशी भेषज, भोजन व भजनादि पर आधारित भारतीय शिक्षा का समावेश हो। बच्चों को प्रारंभ से ही स्वदेशी से स्वावलम्बी भारत बनाने की दीक्षा दी जाए और विद्यालयों में ही स्वदेशी वस्तुएं, वस्त्र व स्वदेशी आयुर्वेदिक दवा आदि बनाने का क्रियात्मक प्रशिक्षण दिया जाए व उन वस्तुओं को बाजार में बेचने की भी व्यवस्था की जाए। विद्यालयों से न्यूनतम मूल्य पर उच्च गुणवत्ता युक्त नित्य प्रयोग उत्पादों शैम्पू, साबुन, टूथपेस्ट, मोमबत्ती, अगरबत्ती, क्रीम, पाउडर, देशी दवा, च्यवनप्राश, आंवलादि के चूर्ण व वस्त्रादि को स्थानीय लोग ममता, प्रेम भाव स चाव से खरीदें, इससे शिक्षा के क्षेत्र में एक नई क्रान्ति होगी। विद्यालय में शिक्षकों व विद्यार्थियों की नियमित उपस्थिति, प्राणायाम, आसन व ध्यानादि के नियमित अभ्यास से बच्चों का शारीरिक, मानसिक व बौद्धिक सर्वांगीण विकास के कार्यक्रम चलाना। गांव के स्कूल गुरुकुल पद्धति के हों, जिसमें आधुनिक, प्राचीन व आध्यात्मिक, वैज्ञानिक, नैतिक, बौद्धिक शिक्षा हो। शिक्षा का माध्यम मातृभाषा रहनी चाहिए, क्योंकि प्रायः यह देखा गया है कि बच्चों की ज्ञान की आकलन शक्ति मातृभाषा में अधिक होती है। स्कूल के ग्राऊंड में बड़े-बड़े पेड़ हों, जिसके नीचे कक्षायें लगाई जा सकें, ताकि विद्यार्थी अनुकूल, प्राकृतिक वातावरण में शिक्षा पा सकें।

हमें बच्चों को ऐसा शिक्षण देना नहीं है कि जिससे वह सिर्फ दिखाऊ कपड़े पहनकर शान मारे, पढ़ने के बाद भी वह खेती में काम करने में शर्म न महसूस करें, घरवालों को बच्चों का उचित गुण पहचानकर उनको उस क्षेत्र में प्रोत्साहन देकर परिपूर्ण होने में मदद करनी चाहिए, उन्हें पढ़ाई के साथ-साथ नदी व तालाब में तैरना आना चाहिए, आपातकालीन स्थिति में पीड़ितों को मदद करने के लायक बनें। बच्चे रसोईकला, घर कला, व्यवहारिक ज्ञान में निपुण हों। वह मलखाम व कुश्ती खेलें, बच्चों को अनेक कला में पारंगत होना चाहिए, उनका ज्ञान कागजी न होकर खेती व छोटे उद्योगों में प्रत्यक्ष रुप से काम आ सके, उन्हें गांव संभालने का व आदर्श करने का प्रशिक्षण मिलना चाहिए। उन्हें सहकार्य, जनसेवा, चरित्र का महत्व पता होना चाहिए। माता-पिता को उन्हें ज्यादा प्यार व ढील नहीं देनी चाहिए, उन्हें जोतने की व गोबर उठाने में शर्म न हो।

- पत्थलगांव, जिला-जशपुर (छ.ग.)

कृष्णाय तुभ्यं नमः

जन्माष्टमी पर विशेष

प्रेषक : लोचन आर्य

(१)

हे कृष्ण प्यारे ! कौन जन, किस को न तेरा ध्यान है ?
वह कौन मन, जिसमें न तेरा शेष अब अभिमान है ?
है कौन शूर-समाज, जो गाता न तेरा गान है ?
हे प्रिय हमारे ! शक्ति तेरी का न किसको ज्ञात है ?

(२)

ब्रज के सघन घन ओट में वह मधुर बंशी की ध्वनि,
यमुना नदी के तीर वाली गोपगण की मण्डली ।
हे कृष्ण ! हम भूले नहीं हैं आपकी वे सब छटा ।
चाहे हमारे चित्त पर हो दुःख की दारुण घटा ।।

(३)

उस सरस बंशी की ध्वनि का राग अद्भुत रस सना,
वर प्रेम से पूरा तथा सुख शान्ति का घर सा बना ।
ब्रजभूमि के जल, पवन, वृक्षों में सुनाई दे रहे ।
श्री कृष्ण प्यारे नाम से दुःख शोक सब का हर रहे ।।

(४)

नीतिज्ञता सुविवेकता तेरी न किस पर ज्ञात है ?
वात्सल्यता अनुरागता तेरी न किस पर ज्ञात है ?
वह वीरता की छाप प्यारे है, लगी तेरी यहाँ,
श्रीकृष्ण ! आप समान जन में और जन होंगे कहाँ ?

(५)

जो, कृष्ण प्यारे ! सत्य का अवलम्ब तुम लेते नहीं,
तो सत्य ही संसार का इतिहास होता कुछ कहीं ।
कर्त्तव्य में रत फिर न होते सत्य सज्जन जानिये,
सत्यांश से भी सत्य का उठना ही निश्चय मानिये ।।

(६)

शिक्षा हमें यह आप बिन मिलती न कुछ संसार में,
कर्त्तव्य पथ पर निज रुधिर गिरता न हम से ताप में ।
हे कृष्ण ! गीता बिना हमारा धैर्य्य बंधता ही नहीं,
जो कर्मयोग अलभ्य पथ है, आप बिन मिलता नहीं ।।

(७)

उपदेश जो श्रीकृष्ण ने हैं ग्रन्थ गीता में दिये ।
हैं पाठ्य वे बालक युवा वृद्धादि सब ही के लिये ।।
यह महाभारत युद्ध में दिखला दिया है कृष्ण ने ।
डिगना न चाहिए सत्य से सर्वस्व बिगड़े या बने ।।

(८)

उपदेश जो श्रीकृष्ण का, यह सर्वथा ही ग्राह्य है ।
भारत प्रजाओं के लिए, सब भाव से निर्वाह्य है ।।
प्यारे तुम्हारे हेतु जो आदर्श तुम ही रख गए ।
इस पुण्यपावन-देश की जो कीर्ति प्यारे कर गए ।।

(९)

सौभाग्य गुण की लालिमा का रत्न जो तुम ने दिया ।
उसने हमारे देश में आलोक है फैला दिया ।।
श्रीकृष्ण यश है छा रहा, सर्वत्र भारतवर्ष में ।
श्रीकृष्णाष्टमी जन्माष्टमी है कह रहे सब हर्ष में ।।

- पता : भानुप्रतापपुर (छत्तीसगढ़)

कैंची की तरह काटना नहीं, सुई की तरह सीना सीखो

जीवन-कला

- कन्हैयालाल आर्य, पू. कोषाध्यक्ष,
आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा

दुनियां में तरह तरह के लोग होते हैं, १. जिनके जीवन से सुगन्ध निकलती है, यह उनके पुण्य कर्मों की कीर्ति है। वह इस समाज में सुई की तरह परिवारों को, समाज को सीने का कार्य करते हैं। २. जिनके जीवन से सुगन्ध निकलता है यह उनके पाप के फल हैं। उनका स्वभाव कैंची की तरह काटना होता है। वह मूर्ख लोग उठते बैठते, चलते फिरते दूसरों के दोष देखते रहते हैं और उन दोषों के आधार पर कैंची का स्वभाव बनाते हुए दूसरों को काटते रहते हैं। परिवारों और समाज के विखण्डन में आनन्द लेते हैं, क्योंकि वे इस विश्व की कामनाओं के जाल में फंसे रहते हैं। ऐसा व्यक्ति केवल अपने स्वार्थ की चिन्ता करता है दूसरों को हानि पहुंचाने में निन्दा करने में आनन्द का अनुभव करता है। वह थोड़ा सा दुख आने पर अपने आप को संसार का सबसे बड़ा दुखी व्यक्ति समझने लगता है। जरा सा सुख आने पर इतना उछलता है कि उसे अपने समान कोई सुखी नहीं लगता। वह अहंकार में लिप्त हो जाता है ऐसा व्यक्ति स्थित प्रज्ञ नहीं होता। उसका स्वभाव सुई की तरह दिलों को जोड़ने में नहीं, कैंची की तरह दिलों को तोड़ने, दुखाने में लगा रहता है। परन्तु वह मूर्ख व्यक्ति यह नहीं जानता दर्जी सुई को सदा टोपी या कमीज की जेब पर लगाता है और कैंची सदा दर्जी के पैरों के पास पड़ी रहती है। जोड़ने वालों का सदा सम्मान होता है तोड़ने और काटने वाले कुछ समय के लिए चाहे अपने मन में खुश हों ले परन्तु अन्ततः उन्हें अपमानित होना पड़ता है। अतः बन्धुओं! कैंची की तरह काटना नहीं सुई की तरह सीना सीखो। भगवान को पाना कठिन नहीं है। एक तरफ से हटाओ, अपने आप को दूसरी जगह से जोड़ दो। पर ध्यान रखना एक तरफ से सावधानी से उखाड़ना होगा, ऐसा न हो कि जड़ तो वहीं रह जाये और पौधा बाहर, तो न इधर के रहोगे न उधर के। संसार की मिट्टी से उखड़ कर स्वर्ग की मिट्टी में अपने आपको जोड़ना है बहुत सम्भाल कर जोड़ना होगा। बुल्लेशाह से किसी ने पूछा, **"भगवान को पाने के लिए क्या करना चाहिए ?"** तो बुल्लेशाह ने कहा, बुल्लैया, रब दा की पावंड़ा - ऐथों उठाणां, उथों लांवड़ा। जैसे पौधे को माली उखाड़ता है और दूसरी तरफ जाकर लगा देता है ऐसे ही मन को तुम इस संसार से हटाओ और परमात्मा में जोड़ दो, परमात्मा मिल जाएगा। कितना सरल रास्ता बताया, परन्तु इसके लिए आवश्यक है योगी को आत्म प्रशंसा से दूर हटना होगा। जब योगी विभूतियां प्राप्त कर लेता है तो संसार के लोग उनकी प्रशंसा करने लगते हैं उनके मान सम्मान में पलकें बिछाने लगते हैं, उन्हें महाराजधिराज, १००८ और न जाने किन-किन पदवियों से अलंकृत करने लगते हैं। यदि योगी इसमें फंस गया तो उसका पतन निश्चित है। वह पुनः उसी लोभ में चला जावेगा। इसलिए योगी को इन प्रशंसाओं से मुक्त होना होगा। वह इन चिकनी चुपड़ी बातों को अनसुना कर दें, सुख दुख में एक सा रहे अपने 'मैं' से प्रभावित न हो, तभी यह योगी कैवल्य की ओर बढ़ सकता है।

जीवन की ऊंचाईयाँ प्राप्त करने के लिए हमें इस साधना से गुजरना चाहिए। हमें ऊंचाईयों पर चढ़ते चढ़ते प्रतिदिन अपने आपको टटोलना चाहिए कि मुझे अहंकार तो नहीं हो गया। अपना परीक्षण प्रतिदिन करो यह चिन्तन करो। कि मैंने अपनी 'मैं' का कितनी बार प्रयोग किया। 'मैं' ध्यान रखूं कि कल मेरी मैं समाप्त होनी चाहिए। धीरे धीरे अभ्यास से 'मैं' समाप्त होती चलेगी और 'मैं' के स्थान पर तू आती जावेगी। यही सच्ची समाधि है।

बच्चों की तरह बनकर रहोगे तो सुख पाओगे -

बच्चा पैदा होता है तो वह परमात्मा का सन्देश लेकर आता है कि ऐ दुनियां के लोगो। तुम प्यार भी करते हो, घृणा भी करते हो। परन्तु प्यार बांटना सीखो, घृणा

नहीं। देखो ! हम दो बच्चे आपस में आज लड़ रहे हैं, उसी समय हमारी मातायें आ गई। उन्होंने अपने अपने बच्चे का पक्ष लेते हुए आपस में दुश्मनी पाल ली। परन्तु दूसरे दिन एक दूसरे को क्षमा करते हुए फिर इकट्ठे खेलना शुरु कर दिया है। इसी प्रकार तुम भी हमारी तरह बच्चे बन कर देखो एक दूसरे के साथ शत्रुता पालने की बजाय, भूलना सीखो। मित्रता करना सीखो, तभी यह संसार दुखों के सागर के स्थान पर सुखों एवं अमृत का झरना बन जायेगा।

पुण्य कर्म करने के लिए साहस की आवश्यकता होती है। जो सच्चे और धार्मिक हैं वह अपने इकरारों पर अटल रहते हैं। उन्हें कोई बड़े से बड़ा प्रलोभन पथ भ्रष्ट नहीं कर सकता, क्योंकि वह स्थित प्रज्ञा होते हैं। उनमें किसी प्रकार का कामनाओं का जाल नहीं होता। वह ज्ञानी बनकर एक सन्यासी, एक सन्त का जीवन जीने वाला हो जाता है। भले ही वह किसी वेश में रहे, किसी भेष में रहे, किसी परिवेश में रहे, किसी भी स्थिति और परिस्थिति में रहे, वह अन्दर से जागृत होता है। ऐसे व्यक्ति के विषय में अर्जुन कृष्ण से पूछता है, वह स्थित प्रज्ञ व्यक्ति किस भाषा में बोलता है ? उसका व्यवहार कैसे होता है ? तब अर्जुन की जिज्ञासा को शान्त करते हुए कृष्ण कहता है कि ऐसे स्थित प्रज्ञ व्यक्ति की वाणी और शब्दावली अपने में अनोखी होती है। ऐसा व्यक्ति अपने में केन्द्रित न होकर समष्टि का अंग बन जाता है। वह कामनारहित सम्राट बन जाता है। उसका मन अन्दर से सन्तुष्ट होता है। वह इतना समृद्ध हो जाता है कि बाहर की धन दौलत और समृद्धि उसके सम्मुख नगण्य हो जाती है। वह एक ऐसे आनन्द से परिपूर्ण हो जाता है, जिसका कोई अन्त नहीं है।

अतः आत्म प्रशंसा से दूर हटते हुए बच्चों की तरह सरल, सुई की तरह समाज को जोड़ते हुए, एक घर को छोड़ते हुए दूसरे घर में प्रवेश करते हुए, पिछले घर का मोह न करते हुए और अगले में आसक्ति न करें तभी हमारा कल्याण होगा। अतः सुई की तरह सीना सीखें, कैंची की तरह काटना नहीं। यही जीवन का उद्देश्य होना चाहिए।

पता : ४/४५ शिवाजीनगर गुड़गांव, हरियाणा

रोचक प्रसंग

काश्मीर का शास्त्रार्थ

एक बार जब गणपति शर्मा काश्मीर गये। उन्हीं दिनों पादरी जानसन वहाँ पहुंचा। पादरी जानसन धारा प्रवाह संस्कृत बोलता था। उसने वेदान्त विषय पर काश्मीरी पंडितों को शास्त्रार्थ के लिए ललकारा उसने काशी व कांची आदि पच्चासों स्थानों पर पौराणिक पंडितों को शास्त्रार्थ के लिए ललकारा था। कश्मीरी पंडित को उसके सामने आने का साहस न हुआ महाराजा प्रताप सिंह ने देखा कि सबसे बड़े हिन्दूराज्य में ब्राह्मण पराजित मनोवृत्ति का प्रदर्शन कर रहे हैं। राज्य की नाक कट रही है। राजा चिन्तित सा था। किसी ने कहा कि आर्य समाज के प्रकाण्ड विद्वान् शास्त्रार्थ समर के सेनानी पं. गणपति शर्मा आजकल यहीं है। उनको निमन्त्रित किया जाए। महाराजा ने पं. जी को बुलाने की आज्ञा दी।

किसी पौराणिक ने कहा, "महाराज वे तो आर्यसमाजी पण्डित है।"

महाराजा ने कहा- तो क्या हुआ यदि आर्यसमाजी है। जॉनसन को तो ठीक कर देगा।

सहस्त्रों श्रोताओं की उपस्थिति में शास्त्रार्थ आरंभ हुआ। "हम आपसे शास्त्रार्थ करने आए हैं।"

पं. जी - पहिले यह बतलाएं कि शास्त्रार्थ शब्द का क्या अर्थ है क्या ? शास्त्र से मतलब आपका छः शास्त्रों से है और क्या आप को यह ज्ञात है कि अर्थ शब्द अनेकार्थ का वाचक है। अर्थ अर्थात् धन, अर्थ अर्थात् प्रयोजन, अर्थ अर्थात् द्रव्य गुण, कर्म (वैशेषिक दर्शन के अनुसार)। शास्त्र भी केवल छः नहीं है, धर्म शास्त्र है, अर्थ शास्त्र, नीति शास्त्र है आप जरा समझाइये कि आप किस शास्त्र का अर्थ करने आये हैं। जब शास्त्रार्थ शब्द का अर्थ समझायेंगे तब हम उत्तर देंगे।

जॉनसन (गड़बड़ाये हुए बोले) - हम इसका उत्तर नहीं दे सकेंगे।

इस पर महाराज प्रताप सिंह ने सिर हिला कर कहा, "अब काहे को उत्तर आयेगा।" तब पंडित जी ने महाराजा से कहा - महाराज जॉनसन उत्तर नहीं दे रहा है।

महाराज ने कहा - "आपके पहिले ही प्रश्न में उसका सिर नीचे हुआ। वह जाये अपने घर।"

महाकवि नाथूराम शंकर शर्मा जी ने इसी पर लिखा - रौंद रौंद मारी जानकारी 'जानसन' की।

- राजेन्द्र जिज्ञासु, वेद सदन, अबोहर (पंजाब)

स्वामी समर्पणानन्द - व्यक्ति नहीं विचार

१ अगस्त जयन्ती

- स्वामी विवेकानन्द

अशेषसेमुषी सम्पन्न तथा अलौकिक प्रतिभा के धनी स्वनाम धन्य पूज्य स्वामी समर्पणानन्द जी की शताब्दी उन्हीं के द्वारा संस्थापित प्रभात आश्रम, मेरठ में मनायी गयी। इस अवसर पर वेद शोध संगोष्ठी सम्पन्न हुई, अनेक विश्वविद्यालयों के मान्य विद्वानों ने अपने शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किए, ब्रह्मचारियों ने स्वरचित संस्कृत पद्यों से पूज्य स्वामी जी को श्रद्धाजंलि समर्पित की। इस प्रकार यह कार्यक्रम सम्पन्न हो गया।

मेरे मस्तिष्क में प्रश्न उत्पन्न हुआ- जिस व्यक्ति की हम जन्म शती मना रहे हैं, क्या वह केवल एक सुशिक्षित व्यक्ति मात्र था अथवा कुछ और भी ? बहुत ऊहापोह एवं चिन्तन के पश्चात् मैं इस निर्णय पर पहुंचा कि वह केवल व्यक्ति मात्र नहीं किन्तु विचार थे। उनके लिखित ग्रन्थ- कायाकल्प, पञ्चयज्ञ प्रकाश, गीता, भाष्य, ऋग्वेद मण्डल मणिसूत्र, शतपथ ब्राह्मण भाष्य, ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद का आंशिक भाष्य, किसकी सेना में भर्ती होंगे, कृष्ण या कंश की ? सप्त सिन्धु सूक्त, वेदों के सम्बन्ध में क्या जानें क्या भूलें आदि ग्रन्थों का आलोडन, परिशीलन करने से स्पष्ट हो जाता है कि इन ग्रन्थों का लेखक केवल असाधारण विद्वान् ही नहीं अपितु अपराजेय ऊहा, विलक्षण प्रतिभा रहस्य उद्घाटिनी मेधा एवं अतर्क्य पाण्डित्य का धनी था।

वे कोरे अक्षरों के पण्डित ही नहीं अपितु स्वलक्ष्य निर्धारित निर्भ्रान्त विचारधारा से परिपूर्ण भी थे। उनका दृष्टिकोण तथा लक्ष्य मध्यान्ह भास्कर के देदीप्मान प्रकाश में हस्तामलकवत् प्रत्यक्ष था। वे बाल्यकाल से ही तातस्य कूपोऽयमिति में आस्था रखने वाले नहीं थे। सामान्य से सामान्य बातों को भी जब तक मन-मस्तिष्क स्वीकार नहीं कर ले, तब तक उसे अपनाने में उन्हें संकोच होता था। बाल्यकाल के गुरुकुलीय जीवन में गले से यज्ञोपवीत निकाल फेक देने वाली घटना इसका ज्वलन्त प्रमाण है। स्वामी श्रद्धानन्द जी के द्वारा यह कहने पर कि यह गुरुकुल का अनुशासन है। इसका तुम्हारी आस्था से सम्बन्ध नहीं। यदि तुम्हें गुरुकुल में पढ़ना है तो यज्ञोपवीत धारण करना ही होगा। उन्होंने अनुशासन मानकर यज्ञोपवीत पुनः धारण कर लिया किन्तु उसने अपनी आस्था का सम्बन्ध स्थापित करने के लिए उनका अहर्निश यज्ञोपवीत धारण करने के विषय में चिन्तन करना उनकी जागरूकता का उत्कृष्ट उदाहरण है।

उनके ग्रन्थ का एक-एक वाक्य तथा उनकी स्थापना या मान्यता आर्ष परम्परा की पोषक तथा आर्ष परम्परा से उद्भूत है। उनके सम्बन्ध में यह कहना यथोचित होगा कि वे आर्ष परम्पराओं के मूर्तिमान् स्वरूप थे। स्वामी समर्पणानन्द जी के विषय में इस प्रकार कहते हुये ये लोग भूल जाते हैं कि इस दृष्टि से ये ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों को भी कल्पना-प्रसूत कह रहे होते हैं क्योंकि ऋषि दयानन्द ने भी यजुर्वेद भाष्य में उक्त प्रकार से ही संगति लगाने का प्रयास किया है।

आज हम उनके जन्मदिवस के अवसर पर श्रद्धाजंलि अर्पित करते हुए यह संकल्प लें तो श्रेयस्कर होगा कि हम भी उन्हीं की भांति गंभीर अध्येता बनकर अनन्य निष्ठा से आर्ष परम्पराओं के प्रचारक एवं प्रसारक बनेंगे। इस समय अन्य समस्त विचारधाराओं के असफल हो जाने पर इसी वैदिक आर्ष विचारधारा की ओर लोगों की दृष्टि लगी हुई है। आवश्यकता बस इस बात की है कि हम आलस्य प्रमाद छोड़कर अदम्य उत्साह एवं धैर्य के साथ इसके प्रसार में लग जायें।

हे विद्यानिधे ! तेरी प्रतिभा कुछ अद्भुत और निराली थी।
प्रतिपक्षी जिससे कांप उठे, वह बुद्धि तेरी आली थी ॥
जब वक्ता बन कर बोले तुम, मानों सरस्वती बोल रही।
वेदों के गूढ़ रहस्यों को, अपनी बुद्धि से खोल रही ॥

-प्राचार्य - गुरुकुल प्रभात आश्रम, मेरठ

छत्तीसगढ़ में वैदिक नाद बजाने वाले निर्भीक संत-स्वामी दिव्यानन्द

स्वामी दिव्यानन्द सरस्वती 'आटा' नामक गांव में आर्य सेनानी रघुवर दयाल की धर्मपत्नी पराधणा पतिव्रता पत्नी रामप्यारी के गर्भ से **१५ अगस्त १९०६** को हमारे चरित्रनायक का अवतरण हुआ। समयानुसार बालक का नामकरण संस्कार कराया गया और पिता ने उसका 'माता प्रसाद' रखा। तब कौन जानता था कि माता का यह प्रसाद ही आगामी जीवन में दिव्य-आनन्द से पूर्ण, राष्ट्र और धर्म का महान् सेवक होगा ?

आगे चलकर इस सात्विक धर्मनिष्ठदम्पती की दो पुत्रियां भी हुई। माता-पिता के एकमात्र पुत्र एवं दो बहनों के लाडले भा माता प्रसाद हृष्ट-पुष्ट, गौरवपूर्ण एवं कुशाग्र बुद्धि के धनी थे। कम पढ़ी-लिखी किन्तु सन्तान निर्माण के लिये संचेत माता रामप्यारी अपने प्रियपुत्र को सुसंस्कृत करने लगी। फौजी अनुशासन तथा महर्षि दयानन्द सरस्वती के विचारों से प्रभावित पिता अपने प्राणप्रिय पुत्र को सर्वविधगुणों से सम्पन्न करने में लग गये। खेल-खेल में माता प्रसाद को सत्यार्थ प्रकाश की सीख दी जाने लगी। पांच वर्ष की अवस्था तक पिता ने गायत्री मंत्री और संध्या के कुछ मंत्र रटा दिये साथ ही मनोरंजक ढंग से लिखना-पढ़ना भी सिखाया। वेदारंभ तथा यज्ञोपवीत संस्कार के साथ बालक माता प्रसाद विद्यालय में प्रविष्ट हुए।

मध्यप्रदेश एवं छत्तीसगढ़ आगमनम्

आर्य प्रतिनिधि सभा म.प्र. व विदर्भ के अधिकारी वृन्द उच्चकोटि के उपदेशक का अभाव महसूस कर रहे थे। उन्होने दिल्ली जाकर सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के तत्कालीन प्रधान पूज्यपाद स्वामी ध्रवानन्द सरस्वती से एक महोपदेशक को मध्यप्रदेश भेजने के लिये अनुरोध किया। पूज्य प्रधान जी ने अनुरोध स्वीकार कर स्वामी दिव्यानन्द सस्वती को मध्यप्रदेश में वैदिक नाद गुंजाने प्रेरित किया। गुरुदेव की प्रेरणा को शिरोधार्य कर स्वामी दिव्यानन्द जी महाराज १९५१ में मध्यप्रदेश व विदर्भ पधारे। आर्यावर्त भारत के हृदय स्थल में अवस्थित मध्यप्रदेश व विदर्भ क्षेत्र सर्वथा पिछड़ा हुआ और अविकसित था। अज्ञान-अंधकार की घटाटोप बादल से घिरा यह प्रदेश शिक्षा क्षेत्र में भी पिछड़ा हुआ था। ऐसे प्रदेश में वैदिक धर्म का प्रचार करना लोहे के चने चबाने के समान था। किन्तु हमारे स्वामी भी सामान्य नहीं थे। महान् चिन्तक, तार्किक और सामयिक थे। योगाभ्यासी और वेद के परमभक्त थे। चुनौतियों से स्फूर्ति पाने वाले स्वामी दिव्यानन्द सरस्वती पीछे हटने वाले नहीं थे। मध्यप्रदेश में वेदवाणी का गुंजार आरंभ किया। थोड़े दिनों में समूचे प्रदेश को उन्होंने आत्मसात् कर दिया। प्रभाव इतना पड़ा कि एक ही वर्ष में आर्य प्रतिनिधि सभ म.प्र. व विदर्भ के आजीवन सदस्य स्वीकार कर लिये गये। तत्कालीन सभा प्रधान श्री घनश्यामसिंह गुप्त, स्वामी जी को विद्वत्ता, नम्रता और तेजोमय आभा से अत्यधिक प्रभावित हुए उनसे अनुरोध कर उन्हें वेद प्रचार अधिष्ठाता के पद पर प्रतिष्ठित कर दिया। सचमुच निष्पक्ष जौहरी ही रत्नादि को सही पहचान पाते हैं। श्री गुप्त जी ने सही व्यक्ति को सही पद पर अधिष्ठित कर अपने को ही धन्य किया, अन्यथा तो रेवड़ियाँ बांटने वाले सत्ताधीश, अपने ही चाटुकारों, पाखंडियों अथवा आत्मश्लाषा में रत हिरण्यकश्यपों के कुतर्कों का सामना कर सुदूर गांव देहातों में वेद ही की बात कहने वाले वेदप्रचार अधिष्ठाता होने के योग्य होते हैं। स्वामी दिव्यानन्द जी उस पद के लिये नहींआये थे, अपितु उस पद का सृजन उनके लिये हुआ था। स्वामी जी महाराज की व्याख्यान शैली बड़ी निराली और हृदयग्राही थीं। उनके अन्तस् से निकले शब्द, श्रोता के रोम-रोम को पुलकित कर देते थे। वेद, दर्शन एवं उपनिषदों पर पूर्ण अधिकार पूर्वक वैदिक सिद्धान्तों के मर्म को साधारण जनता के सामने इतनी मनोहारिणी कथा के माध्यम से प्रस्तुत करते कि जनता सुनकर आत्म विभोर हो उठती थी। जन जीवन के लिये उनके उपदेश संजीवनी के समान जीवन दायक होते थे। वे इतने प्रभावी होते थे कि इनसे सर्वथा अनजान और अपरिचित व्यक्ति भी इनके प्रथम दर्शन व श्रवण से इनके ही हो जाते थे। छत्तीसगढ़ में १०० गांवों में आपको पथप्रदर्शक मानने वाले आज भी विद्यमान है।

आयुर्वेदामृत

लौकी (दूधी) के रस के नियमित सेवन से हृदय रोग पर काबू

- विनोद कुमार सोनी (एक अनुभवी हृदयरोगी)

मैं कई वर्षों से डायबिटीज (शुगर) का मरीज हूं। मेरी शुगर कभी काबू में नहीं रही। नागपुर में मेरा इलाज चलता रहा। मैं दवाईयां बराबर लेता था। लेकिन खाने का परहेज तथा व्यायाम कभी नहीं करता था मुझे ६ माह पहले चलने फिरने से छाती में भारीपन आने लगा, थोड़ा सा वजन उठाने में असमर्थ हो गया, नामी डॉक्टरों के कहने पर मैं टी.एम.टी. टेस्ट करवाया जो स्ट्रांग पाजीटिव आया उन्होंने मुझे एन्जोग्राफी करवाने कहा। मेरी एन्जोग्राफी हुई, रिपोर्ट में बताया गया मेरे हृदय को रक्त पहुंचाने वाली नलिकाएँ ७० से ९९ प्रतिशत तक अवरुद्ध हो गई, एक सप्ताह के भीतर बायपास सर्जरी करवाना आवश्यक है। सुनकर मैं तथा मेरा परिवार काफी परेशान हो गयी, मेरी सोचने समझने की शक्ति नष्ट हो गई, मेरा मनोबल दिनोदिन टूटने लगा सर्जरी में लगने वाला खर्च उठाने की मेरी हिम्मत नहीं थी। इसी तरह दो माह निकल गये। इस बीच मैंने के.ई.एम. अस्पताल मुंबई में सम्पर्क किया जहां मुझे साठ हजार रु. खर्च बताया गया तथा आपरेशन की तारीख दी गई। इसी बीच मेरे बड़े भाई साहब नवल कुमार जी तथा संतोष कुमार जी सोनी ने मुझे मराठी अखबार की कटिंग भेजी जिसमें लौकी के रस के नियमित सेवन से हृदयरोग पर काबू पाने के बारे में जानकारी दी गई तथा डॉ. कोठारी मुंबई का पता, टेलीफोन नंबर दिया गया था। मैंने डॉ. कोठारी से टेलीफोन पर सम्पर्क किया उन्होंने मुझे मुंबई मिलने बुलाया। डॉ. कोठारी एम.डी. डी.जी.ओ. है तथा के.ई.एम. अस्पताल में कार्यरत है। उन्होंने कैंसर पर किताब लिखी है। अभी दो किताबें लिखने में व्यस्त है। अपने व्यस्त समय से समय निकालकर उन्होंने मुझे एक घंटे का जो समय देकर जानकारी दी एवं उनकी बातचीत से मैं ५० प्रतिशत निरोगी हो गया, मेरा आत्मबल बढ़ गया उन्होंने कहा बायपास सर्जरी की कोई जरुरत नहीं। निम्न तरीके से लौकी के रस का सेवन करो तथा रोजना घंटा भर तथा सप्ताह में एक दिन तीन घंटे घुमने जाओ। उनके बताये अनुसार मैंने प्रयोग किया। मुझे २-४ दिन में ही फायदा महसूस होने लगा। मैंने कई लोगों को बताया, उन्होंने भी प्रयोग किया उन्होंने भी फायदा महसूस किया।

लौकी का रस बनाने की विधि :- शुरु में १०० से १५० ग्राम लौकी छिलके सहित किसकर मिक्सर में डालकर इसमें ५-६ तुलसी के पत्ते, ५-६ पोदीने के पत्ते डालकर रस बनाना। रस को छानकर जितना रस तैयार हो उतना ही पानी मिलाना, स्वाद के लिए थोड़ी पिसी कालीमिर्च तथा सेंधानमक मिलाना। धीरे धीरे २५० ग्राम तक लौकी का रस निकालकर लेना। शुरु में दस्त वगैरह लगे तो चिंता नहीं करना।

रस को लेने की विधि : खाना खाने के आधा घंटे बाद दिन में तीन समय (दोपहर, शाम, रात्रि) ताजा रस निकालकर लेना चाहिए।

परहेज :- सभी प्रकार की खटाई जैसे संतरा, निंबू, इमली, खट्टी दही, छाछ इत्यादि नहीं लेना।

प्रातःकाल घूमना आवश्यक : मैं तीन माह से लौकी के रस का सेवन कर रहा हूँ। रोजाना ६-७ कि.मी. घुमने जाता हूं, दिन भर दुकान में काम करता हूं, २०-२५ किलो तक वजन आराम से उठा सकता हूं। हृदय में किसी भी प्रकार परेशानी नहीं महसूस होती तथा थकान भी महसूस नहीं होता। इस प्रयोग से मेरी शुगर भी काबू में आ गयी, इन्सुलीन का डोज आधा हो गया। हृदयरोगियों को इसका लाभ मिले, मेरे अनुभव को स्वस्थ व्यक्ति भी इसका सेवन कर सकता है।

मुट्ठी में "ताकत"
लेकर बढ़ोगे तो..
"सफलता"
प्रतीक्षा करती मिलेगी

स्वतंत्रता दिवस के उपलक्ष्य पर हार्दिक शुभकामनाएँ

मातृभूमि की पूजा करके, नफरत मत करिए।
अपनी धरती माँ से आप, बगावत मत करिए॥

स्वर्ग समान देश, निर्भय सबका जीवन है।
देशद्रोही बनकर, भयभीत मत करिए॥

कई त्याग, बलिदानों से देश आजाद हुआ।
सपने में भी देश को विभाजित मत करिए॥

समान अधिकार, गौरव, सुविधा सब तो है।
सुख चैन से जी कर भी शिकायत मत करिए॥

विश्व शान्ति के पुजारी, क्षमा के पहरेदार हम।
दुष्कर्मों से शीश झुके, ऐसा भारत मत करिए॥

गंगा जमना सभ्यता हमसे दुनिया सीखी है।
गौरवशाली भारत को अपमानित मत करिए॥

तुमको है सौगंध मिट्टी की, खुद को मत बेचिए।
बदनाम देश हो ऐसा कदाचित् मत करिए॥

मजहबों की दुकानों से खूब तिजारत कर लिए
अब तो बाज आओ, फिर वही हरकत मत करिए॥

भारत माँ की संतान सारी, संग जीऐंगे मरेंगे।
अपनो से हो या गैरों से विश्वासघात मत करिए॥

आबरु वतन की बचाये रखिए।
एकता वतन की बनाये रखिए॥

यूँ तो चमकता है हिमालय मगर।
आसमान में तिरंगा लहराये रखिए॥

भेदभाव के काँटे जहाँ भी पलते हैं।
उन पेड़ों को जड़ से मिटाये रखिए॥

सुलगती आग दुश्मनी की दोस्तों।
बढ़ने से पहले बुझायें रखिए॥

अंधियारा चाहे हो जाये जितना
मन बाती में दीप जलाये रखिए॥

चाहे छूट जाये तुमसे कारवाँ मगर।
मंजिल की ओर कदम बढ़ाये रखिए॥

धन-दौलत, नहीं भाईचारा चाहिए।
यही होठों पर सदा दुआयें रखिए॥

- नरेश हमिलपुरकर
संपादक : राष्ट्रीय बुलेटिन
भास्करनगर, चिटगुप्पा, बीदर-कर्नाटक

कविता

ओ३म् प्राणमय तत्व

सर्व व्याप्त अदृश्य है, निराकार भगवान।
यदि होता साकार वह, सब लेते पहचान।
वेद सृष्टि आरम्भ हो, सत्य ज्ञान सद्ग्रन्थ।
सहज विश्व कल्याण का, एक अलौकिक पंथ।
श्रेष्ठ आर्यजन विश्व में, ऋषि-मुनि की सन्तान।
चारों वेदों में निहित, सत्य ज्ञान-विज्ञान।
आर्यों की जन्म स्थली, पावन आर्यावर्त।
उज्ज्वल छवि दिख जाएगी, आओ पोंछे गर्त।
वर्ण व्यवस्था जन्म से, कभी नहीं स्वीकार्य।
आर्य जाति के शत्रु दो, शूद्र ज्ञान, पाखण्ड।
बढ़े अन्ध विश्वास जब, जले समाज प्रचण्ड।
तीनों आदि अनन्त है, जीव प्रकृति भगवान।
जड़ चेतन का हेतु है, अणु-परमाणु घनत्व।
धन, पद अथवा ज्ञान से, भरे न मन का पात्र।
अक्षय, अमित अनन्त है, ओ३म् साधना मात्र।
वातावरण विशुद्ध हो, यदि घर-घर हो यज्ञ।
भारत होगा विश्व गुरु, जन-जन बने सुविज्ञ।

- गौरीशंकर वैश्य 'विनम्र' पता: ११७, आदिल नगर, डाकघर विकास नगर, लखनऊ २२६०२२

आदमी

आश्रय देने पर सिर चढ़ जाता है।
उपदेश देने पर मुड़कर बैठता है॥
आदर करने पर खुशामद समझता है।
उपकार करने पर अस्वीकार करता है॥
विश्वास करने पर हानि पहुंचाता है।
क्षमा करने पर दुर्बल समझता है॥
प्यार करने पर आघात करता है।
क्या यह चरित्र उचित है ?

सौजन्य : श्री नित्यानन्द वानप्रस्थी जी, रायगढ़

आरोग्य होमियोपैथी से कोलेस्ट्रॉल का उपचार

- डॉ. विद्याकान्त त्रिवेदी
(होमियोपैथिक चिकित्सक)
मोबा. : ७०००२३६२१३, ९४२५५१५३३६

शरीर में पाई जाने वाली कोलेस्ट्रॉल एक प्रकार की चर्बी होती है, जो शरीर में कई प्रकार की क्रियाकलापों को कराने जैसे नई कोशिकाओं के निर्माण, इंसुलिन तथा हारमोन्स उत्पादन करने में आवश्यक है। कोलेस्ट्राल दो तरह के होते हैं :- (१) एलडीएल (खराब कोलेस्ट्राल) - खराब कोलेस्ट्राल से हृदय रोग होने की संभावना बढ़ जाती है। (२) एचडीएल (अच्छा कोलेस्ट्राल) - अच्छे कोलेस्ट्राल से खतरा बहुत कम अर्थात् शून्य के बराबर होता है।

कोलेस्ट्राल से धमनी की दीवारों में जलन युक्त रोग पैदा हो जाते हैं, जिसे अर्थरोस्क्लोरोसिस कहते हैं। इस रोग के कारण से धमनी की दीवारों में चर्बी जाम हो जाती है और रक्त संचालन में रुकावट पैदा हो जाती है और इसके कारण से दिल का दौरा भी पड़ने लगता है। शरीर में कोलेस्ट्राल का सामान्य स्तर लगभग १ ग्राम का चौथा भाग होना चाहिए।

कारण :- यह रोग अनुवांशिकता के कारण से भी हो सकता है, अर्थात् यदि किसी व्यक्ति के परिवार में अनुवांशिक रोग मोटापा किसी को है तो उस परिवार में किसी भी व्यक्ति को यह रोग अधिक होने का खतरा रहता है। गतिहीन जीवन बिताने से भी यह रोग अधिक होता है जैसे चलने-फिरने का कार्य न करना, व्यायाम न करना। मधुमेह रोग या मानसिक दबाव के कारण से भी यह रोग हो सकता है। स्टराइड का दुष्प्रयोग के कारण से कोलेस्ट्राल रोग हो सकता है। यकृत रोग तथा थायराइड से संबंधित रोग होने के कारण से यह रोग हो सकता है।

लक्षण :- इस रोग से पीड़ित रोगी के छाती में दर्द होता है, मोटापा बढ़ जाता है, मधुमेह का रोग भी हो जाता है, रोगी के रक्त में कोलेस्ट्राल की मात्रा बहुत अधिक बढ़ जाती है व यदि इस रोग से धमनियां प्रभावित हो गई हो तो नपुंसकता रोग हो जाता है। रोगी के मांसपेशियों में दर्द होता है। वैसे रक्त में कोलेस्ट्राल की मात्रा बढ़ जाने से कारण से कोई विशेष प्रकार के लक्षण नहीं दिखाई पड़ते। इस रोग के कारण से कुछ गंभीर अवस्थाएं भी पैदा हो सकती है, जैसे हृत्शूल, उच्चरक्तचाप, हृदयरोग या आघात होना आदि।

कोलेस्ट्राल रोग होने पर क्या करें या क्या न करें :-

सबसे पहले इस रोग से पीड़ित रोगी को वह भोजन बिल्कुल भी सेवन नहीं करना चाहिए जिसमें कोलेस्ट्राल की मात्रा अधिक हो। रोगी को हाइड्रोजनकृत चर्बी जैसे - घी, मक्खन, वनस्पति, नारियल का तेज, नकली मक्खन या ताड़ का तेल आदि का उपयोग भोजन में नहीं करना चाहिए। इन तेलों की जगह रोगी को सोयाबीन तेल, सूर्यमूखी तेल या कुसुम कराड़ी तेल का उपयोग करना चाहिए। पापकार्न, मजोला या सफोला तेल का भी उपयोग भोजन बनाने में कर सकते हैं। अधिक चर्बी उत्पन्न करने वाले भोजन जैसे कचौड़ी, समोसे या केक आदि का सेवन न करें। क्रीम, पनीर या दूध से बने दही या अन्य मिठाईयां जो गाढ़े दूध से बनी हो जैसे - गुलाब जामुन, मावा, चाकलेट तथा रसगुल्ले आदि चीजों का सेवन नहीं करना चाहिए। यदि दूध का उपयोग करना भी हो तो मलाई हटे दूध का प्रयोग करें। मलाई हटे दूध से बनी पनीर का उपयोग भी कर सकते हैं। इस रोग से पीड़ित रोगी को किसी भी प्रकार के मांस का सेवन नहीं करना चाहिए। रोगी को कड़े छिलके वाले फल नहीं खाना चाहिए।

होमियों औषधियां :- **नक्स, चाइना, कर्बोवेज, पल्साटिला** आदि औषधियां चिकित्सक की सलाह से ली जा सकती है। कई रोगी ठीक हो गये हैं, कई रोगियों का उपचार चल रहा है।

पता : त्रिवेदी होमियो औषधालय, टाटीबन्ध, रायपुर ४९२००१ (छ.ग.)

"मेरा आर्य नेताओं से एक विनम्र निवेदन"

- खुशहालचन्द्र आर्य

"खुशहाल" कहना चाहता है, आर्य जगत् के सभी नेताओं को एक यह बात।
जो आर्यसमाज की बिगड़ी हालत देख, रोता है दिन-रात ।।
यदि आप चाहते हो करना आर्य समाज का कल्याण व भला ।
तो फूट मिटाकर, एक हो जाओ, यही है मेरी नेक सलाह ।।
जब तक नहीं होता सच्चे आर्यों का, एक महान् सार्वदेशिक संगठन ।
तब तक कितना ही कर लो, नहीं चलेगा आपका अलग-अलग गठबन्धन ।।
आखिर इसका एक ही ईलाज है, अच्छे आर्यों की एक सार्वदेशिक बन जाना ।
मुझे पूर्ण विश्वास है, सफल होगा आपका सद्प्रयास, सब नेताओं का एक हो जाना ।।
ईश्वर सभी नेताओं को सद्बुद्धि देवे, सीखें वह एक-दूसरे को गले लगाना ।
तभी महर्षि का स्वप्न साकार होगा और विश्व पुनः करने लगेगा हमारी सराहना ।।
बहुत समय हो गया आपको, अपने स्वार्थ वश परस्पर लड़ते-लड़ते ।
प्रसन्नता है, ईश्वर की अपार कृपा से, अब सभी आर्य नेता चेते ।।
अब सभी आर्यों, एक हो जाने की कर लो प्रतिज्ञा, पूरी करेंगे बात आज की ।
एक सार्वदेशिक बनाकर ही रहेंगे और पुरानी छवि पुनः बनायेंगे आर्यसमाज की ।।

पता : गोविन्दराम आर्य एंड संस, १८०, महात्मा गांधी रोड, (दो तल्ला), कोलकाता-७००००७

योग साधना शिविर

जम्मू कश्मीर की सुरम्य एवं मनोरम पहाड़ियों में स्थित आनन्दधाम आश्रम (गढ़ी आश्रम) उधमपुर, जम्मू काश्मीर में आश्रम के मुख्य संरक्षक एवं निदेशक पूज्य महात्मा चैतन्यस्वामी जी की अध्यक्षता एवं पूज्य मां सत्यप्रियायति जी के सान्निध्य में दिनांक १५ से २२ सितम्बर २०१९ तक निःशुल्क योग-ध्यान-साधना शिविर का आयोजन किया गया है। जिसमें अनुभवी आचार्यों एवं महात्माओं द्वारा उपासना, प्राणायाम, योगासन आदि का क्रियात्मक अभ्यास कराया जायेगा। इस अवसर पर पूज्य चैतन्यस्वामी जी के ब्रह्मत्व में प्रतिवर्ष की भांति सामवेद पारायण यज्ञ का आयोजन भी किया गया है। उपनिषद् एवं योग-दर्शन पर मुख्यतः चर्चाएं होंगी तथा शिविर में साधक अपनी शंकाओं का समाधान भी कर सकेंगे। आश्रम में पूज्य स्वामी जी के सान्निध्य में पहले लगाए गए शिविरों में शिविरार्थियों के बहुत अच्छे अनुभव रहे हैं इसलिए साधकों की संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही है। अतः इच्छुक साधक अपना स्थान आरक्षित करने के लिए **फोन नं. ०९४१९१०७७८८ व ०९४१९१९८४५१** पर तुरन्त सम्पर्क करें।

- भारत भूषण आनन्द, आश्रम ट्रस्ट प्रधान

विश्व-संस्कृत-दिवस (श्रावणी पूर्णिमा)

प्रत्येक कार्य का आरम्भ लघु होता है फिर वह महान् होता जाता है। इस दृष्टि से विश्व संस्कृत दिवस का लघु रुप व्यक्ति संस्कृत दिवस, फिर ग्राम-संस्कृत दिवस, जिला संस्कृत दिवस, प्रान्त संस्कृत दिवस, राष्ट्र संस्कृत दिवस अन्त में विश्व संस्कृत दिवस का क्रम होता है। किन्तु यह उतावलापन क्यों? लगता है कि संस्कृत बोलने में झिझक महसूस हुई इसलिए विश्व को संस्कृतज्ञ लोग अपने साथ समेटने के लिए विश्व संस्कृत दिवस मनाया जा रहा है। यह तो बिलकुल सत्य है, **"एकोऽहं बहुस्याम्"** न्याय से अकेला संस्कृत चिन्तक, वक्ता, श्रोता होने से काम नहीं चलने वाला, व्यक्ति, ग्राम, जिला, प्रान्त, राष्ट्र और विश्व की ओर अग्रसर होना पड़ेगा, रेखाचित्र बनाकर उसमें विविधाकृति बनाकर रङ्ग बनाना पड़ेगा। श्रवणा नक्षत्र जिस पौर्णमासी को पड़े वह **"श्रावणी पूर्णिमा"** है। नक्षत्र का नामकरण परमात्मा ने वेदों के श्रवणार्थ ही किया है। श्रावण मास से माघ मास तक वेदों का स्वाध्याय जोरों पर किया जाता रहा है। इसीलिए बहुधा चिन्तन करके श्रावणी पूर्णिमा को विश्व संस्कृत दिवस घोषित किया गया है।

– सम्पादक

अग्निदूत के ग्राहक सदस्यों की सेवा में

छत्तीसगढ़ प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा के मासिक मुख पत्र **'अग्निदूत'** के समस्त ग्राहक सदस्यों से निवेदन है कि अपना वार्षिक शुल्क १००/- यथाशीघ्र सभा कार्यालय को भेज दें, जिससे कि उन्हें नियमित रूप से 'अग्निदूत' भेजा जाता रहे। जिन सदस्यों के शुल्क तीन वर्षों से अधिक बकाया हो, उनसे निवेदन है कि वे अपना दसवर्षीय शुल्क ८००/- रु. भेजें। इस कार्य को यथाशीघ्र प्राथमिकता से करें। अन्यथा **इस मास से अग्निदूत भेजना बंद कर दिया जायेगा।** पत्र व्यवहार में अपना सदस्य संख्या तथा पूरा पता पिन कोड सहित अवश्य लिखें। **छत्तीसगढ़ प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा का भारतीय स्टेट बैंक दुर्ग शाखा में सेविंग एकाऊन्ट नं. : 32914130515, आई.एफ.एस.सी. SBIN0009075 कोड नं. अथवा देना बैंक दुर्ग शाखा में सेविंग एकाऊन्ट नं. 107810002857 आई.एफ.एस.सी. BKDN0821078 है, जिसमें आप किसी भी भारतीय स्टेट बैंक/देना बैंक की शाखा से आनलाईन शुल्क जमा कर सभा कार्यालय के दूरभाष नं. 0788-4030972 द्वारा सूचित करते हुए या अलग से पत्र लिखकर अवगत कर सकते हैं। अग्निदूत मासिक पत्रिका के सम्बन्ध में कोई भी शिकायत हो तो कृपया श्रीनारायण कौशिक को चलभाष नं. 9770368613 में सम्पर्क कर सकते हैं।**

– दीनानाथ वर्मा, मंत्री मो. 9826363578

कार्यालय पता : 'अग्निदूत', दयानन्द परिसर, आर्यनगर, दुर्ग (छ.ग.) 491001, फोन : 0788-4030973

दिनांक 28 जुलाई 2019 को महर्षि दयानन्द सेवाश्रम टाटीबन्ध रायपुर में सम्पन्न अंतरंग सभा बैठक में सभा के नवनिर्वाचित पदाधिकारियों एवं अंतरंग सदस्यों का सम्मान किया गया का चित्रमय झलकियाँ

CHH-HIN/2006/17407 अगस्त 2019 डाक पंजी. छ.ग./दुर्ग संभाग/99/2018-20
अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लायसेंस नं. : TECH/1-170/CORR/CH-4/2017-18-19

भारत

के व्यंजनों का आधार,
है, एम.डी.एच. मसालों से प्यार।

MDH
मसाले
असली मसाले
सच-सच

ESTD. 1919
महाशियाँ दी हट्टी (प्रा०) लिमिटेड
9/44, कीर्ति नगर, नई दिल्ली -110015, 011-41425106-07-08 www.mdhspices.com

सम्पादक प्रकाशक मुद्रक आचार्य अंशुदेव आर्य द्वारा छत्तीसगढ़ प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा, दयानन्द परिसर, आर्यनगर, दुर्ग के वैदिक मुद्रणालय से छपवाकर प्रकाशित किया गया।
प्रेषक : "अग्निदूत", हिन्दी मासिक पत्रिका, कार्यालय, छ.ग. प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा, दयानन्द परिसर, आर्यनगर, दुर्ग (छ.ग.) 491001